नारायण स्वामी

...पुस्तक श्री प० अमरनाथ जी सप्रू
...ाध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी ने
...की सेवा में सादर भेंट की।

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित हैं । इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा ।

विदेशों में आर्यसमाज

प्रकाशक—
सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, देहली

॥ ओ३म् ॥

विदेशों में आर्यसमाज

(श्रीमद्दयानन्द निर्वाण अर्द्धशताब्दी के उपलक्ष्य में)

प्रकाशक—

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, देहली ।

बा० चांदमल चण्डक प्रबन्धकर्ता के प्रबन्ध से
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित.

प्रथमवार

दयानन्दाब्द १०६
१६३३ ई०

मूल्य ॥)

प्रारंभिक शब्द

विदेश में आर्यसमाज के प्रचार का संक्षिप्त सा इतिहास जनता के सम्मुख रक्खा जाता है। इतिहास अधूरी सामग्री के कारण अधूरा ही कहा जा सकता है। इस श्रीमद्दयानन्द निर्वाण-अर्द्धशताब्दी महोत्सव से पहले ही प्रकाशित होना था इसलिये तय्यारी में भी इसके अत्यन्त शीघ्रता करनी पड़ी। इसी शीघ्रता में अनेक त्रुटियां रह गई होंगी। भाषा के भी दोष रहे ही होंगे। इसे इतिहास के प्रारंभिक रूप ही में उपस्थित किया जाता है। विश्वास है अगला संस्करण किसी उचित समय पर अच्छा निकल सकेगा। मैं इस अवसर पर पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने इस इतिहास के देखने की कृपा की और बहुमूल्य प्रस्ताव किये, उनके प्रायः सभी प्रस्तावों को स्वीकार करके उचित संशोधन और परिवर्धन किया गया है। स्वामी भवानीदयालजी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इस सामग्री के एकत्र करने और एकत्र करके इस सभा को अर्पण करदेने की उदारता दिखलाई है। म० शिवचन्द्रजी गुप्त का परिश्रम भी, जिन्होंने उपर्युक्त सामग्री को इतिहास का रूप दिया है, सराहनीय है।

१२-१०-३३

नारायण स्वामी

ओ३म्

विदेशों में आर्य्यसमाज

भूमिका

फरवरी सन् १९२५ ई० में योगिराज भगवान् महर्षि दयानन्द का मथुरा में जन्मशताब्दी मनाना आर्य-जगत् के इतिहास में एक अमर घटना रहेगी। उस समय जहाँ आर्य जनता ने पाँच सहस्र वर्षों से गाढ़ निद्रा में सोये हुए भारतवर्ष को जगाने वाले उस महर्षि की अमर आत्मा के प्रति अतुल प्रेम-पूर्ण श्रद्धाञ्जलि चढ़ाई थी और उनके अवर्णनीय ऋणों के लिये हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुये उनके दर्शाये हुए मार्ग को स्फूर्ति देने के लिये अनेक प्रस्ताव स्वीकार किये थे वहाँ "विदेशों में आर्यसमाज" के सम्बन्ध में भी एक निम्नलिखित प्रस्ताव श्री पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने उपस्थित किया था जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ—

(क) प्रत्येक आर्यसामाजिक शिक्षासम्बन्धी संस्था यथाशक्ति एक अथवा एकाधिक प्रवासी विद्यार्थियों को निःशुल्क भरती करने और उनका पूर्ण व्यय सहन करने की आयोजना करे।

(ख) उपनिवेशों में शिक्षा-प्रचार अथवा धर्मप्रचार के लिये एक कार्य्य-क्रम तय्यार करने के लिये एक कमेटी नियत की जाय जिसमें विशेषतः औपनिवेशिक भारतीयों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हों।

(ग) विदेशों में अब तक आर्यसमाज द्वारा जो जो कार्य हुए हैं उनका पूर्ण विवरण शीघ्र ही प्रकाशित किया जाय।

(घ) जो आर्यसामाजिक संस्थाएं अथवा पत्र उपनिवेशों में धर्म-प्रचार, हिन्दीप्रचार अथवा शिक्षाप्रचार कर रहे हैं उन्हें समुचित सहायता दी जाय।

(च) भारतवर्ष का प्रत्येक आर्यसमाज उपनिवेशों से लौटे हुए प्रवासी भाइयों को अपने अपने समाज में स्थान दिलाने में भरपूर प्रयत्न करे।

कुछ कारणवश इस कार्य को सन् १९२८ तक सुचारुरूप नहीं दिया जासका। सार्वदेशिक सभा की ता० २४-३-२९ की अंतरंग की बैठक में इस विषय पर विचार हुआ और यह निश्चय हुआ कि इसके सम्बन्ध में श्री स्वामी भवानीदयालजी, श्री पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी, श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी इत्यादि से सम्मति मंगाई जावे। उनकी सम्मतियाँ आने पर अन्त में सबने ही एक प्रश्नावलि के आधार पर विदेशों से सामग्री इकट्ठा करना उचित समझा।

सभा ने इस प्रश्नावलि को अपने बाईसवें वार्षिक वृत्तान्त में प्रकाशित कराकर श्री स्वामी भवानीदयालजी द्वारा समस्त उपनिवेशों की प्रतिनिधि सभाओं और मुख्य मुख्य समाजों को भेज दिया ताकि वे शीघ्र ही इनके क्रमशः उत्तर से सभा को सूचित करें।

बहुत समय तक इन प्रतिनिधि सभाओं तथा समाजों के उत्तर की प्रतीक्षा की। कई बार उनको उनके कर्तव्य का स्मरण कराकर इस आवश्यक कार्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया, परन्तु कोई परिणाम न निकला। श्री स्वामी भवानीदयालजी अब की बार जब अफ्रीका गये तो वहाँ जाकर उन्होंने स्वयं कष्ट उठाकर सब सामग्री इकट्ठी की और ३ फरवरी सन् १९३३ को उसे सभा के कार्यालय में भेज दिया।

इसके सम्बन्ध में दो बातें हमें अपने आर्यप्रवासी भाइयों से बड़े दुःख के साथ कहनी हैं:—

(१) उन्होंने ऐसे कार्य में, जिसका अधिकतर सम्बन्ध उन्हीं के साथ था, हमारे साथ सहयोग देने में अत्यन्त उदासीनता और अकर्मण्यता का परिचय दिया है।

(२) जिस क्रम से हमने उनसे विवरण भेजने के लिये प्रार्थना की थी, मौरीशस की आर्यप्रतिनिधि सभा के अतिरिक्त अन्य किसी सभा ने नहीं भेजा। अधिकतर वहां की प्रतिनिधि सभाओं और समाजों ने बहुतसी अनावश्यक बातें लिख भेजी हैं

जिनसे हमारा अभिलषित प्रयोजन पूर्णतया सिद्ध नहीं हो सकता और उसमें से आवश्यक, लाभदायक और उपयोगी सामग्री छांटने में हमको बहुतसा समय व्यय करना पड़ा है ।

परन्तु फिर भी हमने उस साधारण विवरण में से सार निकाल कर समुचित ढंग से पाठकों के सन्मुख उपस्थित करने का यत्न किया है ।

दो चार बातें हमें अपने उन उपदेशक भाइयों के पक्ष और विपक्ष में कहनी हैं जो विदेशों में प्रचारार्थ जा चुके हैं । हमारे दुःख का पारावार नहीं रहा जब हमने उन विवरणों में देखा कि बहुतसे नामधारी आर्योपदेशक समय समय पर वहां पर स्वार्थहित साधन के लिये गये हैं । कोई किसी व्यापारिक कंपनी का एजेन्ट बनकर गया, किसी ने किसी निधि के नाम पर वहां के भोले भाले भाइयों से रुपया बटोर कर अपना उल्लू सीधा किया, किसी ने अन्य कलुषित ढंगों से धन बटोरा, कोई अपने कार्य की मिथ्या रिपोर्ट स्वयं अथवा अपने किसी मित्र द्वारा समाचार पत्रों में भेजता रहा, किसी ने कतिपय सभा और समाजों के सभासदों को लड़ाकर उनमें फूट का बीज बो दिया । कई सज्जन तो यहां से केवल अपनी संस्थाओं के लिये चन्दा ही मांगने गये । यही कारण है कि जितनी सफलता विदेशों और उपनिवेशों में आर्य-संस्कृति को फैलाने में प्राप्त होनी थी नहीं हुई ।

हमारा आक्षेप विदेश में गये हुए सब भाइयों पर लागू नहीं, अनेक महानुभावों ने नाना प्रकार के कष्ट उठाकर तप और त्याग का जीवन व्यतीत करके वहां वैदिक-धर्म की बड़ी विशुद्ध सेवा की है। उनके नाम उपनिवेशों के इतिहास में हिन्दुओं को विधर्मी होने से बचाने और वैदिक-सभ्यता और संस्कृति को वहां पर फैलाने के लिये अमर रहेंगे। ऐसे व्यक्तियों के भेजने का श्रेय कतिपय यहां की आर्यप्रतिनिधि सभाओं को ही है।

ध्यान देने योग्य बातें

अवांछनीय मनुष्यों से हमें सदा सावधान रहना चाहिये। भविष्य में विदेशों में बसे हुए आर्य-भाइयों को चाहिये कि वह किसी भी उपदेशक को विना सार्वदेशिक सभा की अनुमति के वहां न बुलायें। सार्वदेशिक सभा भी शीघ्र ही ऐसी आयोजना तैयार करने वाली है जिससे भविष्य में अनधिकारी प्रचारकों को विदेशों में कोई स्थान न रहेगा।

इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ सामग्री इकट्ठी कराने में और अपने अमूल्य विचार और अनुभवों से हमको लाभ पहुंचाने के लिये श्री स्वामी भवानीदयालजी महाराज, श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज, श्री स्वामी शंकरानन्दजी महाराज और श्री पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन महानुभावों के प्रति सभा अपनी हार्दिक कृतज्ञता

प्रकट करती है । सभा उनके कष्टों के लिये सदैव आभारी रहेगी । श्री स्वामी भवानीदयालजी तथा श्री पण्डित बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने तो विशेष रूप से अपने सहयोग और उदारता का परिचय दिया है ।

आर्यमित्र तथा अन्य पत्रों में सभा पर आक्षेप किया गया है कि उसने स्वामी भवानीदयालजी से इस पुस्तक को क्यों नहीं लिखवाया । इस अवसर पर हम जनता तथा स्वामीजी को यह विश्वास दिला देना चाहते हैं कि हमारे हृदय में उनके लग्न के साथ कार्य करने के लिये आदर का भाव है । संक्षिप्त रूप में पुस्तक का शीघ्र ही निकल जाना अत्यन्त आवश्यक समझ कर उनके एकत्रित मसाले का हमने यह उपयोग किया है । भविष्य में हमें एक विस्तृत इतिहास इसी विषय का विदेश प्रचार के बढ़ते हुए कार्य को दृष्टि में रखते हुए लिखना पड़ेगा और हमें पूर्ण आशा है कि उसमें स्वामीजी से हमें भरपूर सहायता मिलेगी । आठ वर्ष से जिस कार्य्य के लिये जनता के तकाजे पर तकाजे हो रहे थे उसे हम अधिक दिनों तक स्थगित करना अनुचित समझ कर यह संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं ।

जिस समय श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज की निर्वाण अर्द्धशताब्दी अजमेर में मनाई जावेगी उसी समय यह पुस्तक आर्यजनता के हाथ में पहुँचेगी ।

आशा है कि इस पुस्तक से पाठकों को विदेशों में वैदिक-धर्म की अब तक वास्तविक परिस्थिति का थोड़ा बहुत परिचय हो जावेगा और भाविष्य में वहाँ जाने वाले आर्योपदेशकों को उनके प्रचार-कार्य में सहायता मिलेगी।

प्रभु वह शुभ दिवस शीघ्र लाये कि फिर सारे संसार के कोने कोने में ऋषि मुनियों की प्राचीन सभ्यता फैल जावे और सारा संसार सुख, प्रेम और शांति के साथ अपना जीवन व्यतीत करे।

मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य्यप्रतिनिधि सभा

* ओ३म् *

विदेशों में आर्यसमाज

दक्षिण अफ्रीका

भारतीयों का आगमन—यहाँ पर सब से पूर्व मद्रास प्रान्त से "खैरा" जहाज द्वारा १७ नवम्बर सन् १८६० को कुली प्रथा के अनुसार पाँच वर्ष का बौंड लिखाकर कुछ हिन्दू आये। इसके पश्चात् संयुक्तप्रान्त, बंगाल, विहार तथा अन्य प्रान्तों से भी इसी प्रकार हिन्दू आये। तत्पश्चात् बम्बई प्रान्त से कुछ गुजराती तथा अन्य भारतवासी विना किसी शर्त के व्यापार करने के विचार से यहाँ आये।

दक्षिण अफ्रीका के प्रांत और उनमें भारतीय जनसंख्या

नाम प्रान्त	भारतीयों की संख्या	वर्ष
केपकालोनी	६६५५	१६२६
नेटाल	१४६६८३	१६३१
ट्रान्सवाल	१५७४७	१६२६
दक्षिण रोडेशिया	१०००	१६३२
उत्तरी रोडेशिया	१७१	१६३०
न्यासालैंड	१५०६	१६३१

आर्यसमाज के प्रचार-युग से पूर्व की दशा—अभागे भारतीय जिस समय अपनी अज्ञानता और मूर्खता के कारण थोड़े से धन के लोभ में फँसकर अपनी प्यारी जन्म-भूमि को

सदैव के लिये छोड़ते थे उस समय वे अपने यज्ञोपवीतों को उतार कर भगवती भागीरथी को सौंप दिया करते थे। दक्षिण अफ्रीका आते २ अपने प्यारे धर्म के भाव को बिलकुल तिलाञ्जलि दे देते थे। उनको फिर कभी स्वप्न में भी ख़याल नहीं होता था कि उनका पहले भी कभी किसी धर्म से सम्बन्ध था।

सामाजिक कुरीतियां उनके जीवन में इतना प्रवेश कर चुकी थीं कि विवाहों तक का कोई नियम नहीं था। बूढ़ी स्त्रियां युवा पुरुषों के साथ विवाह करती थीं और छोटी २ बच्चियां बुड्ढों के साथ बांधदी जाती थीं। स्त्रियों के लिये परस्पर लड़ाई झगड़े और खून-ख़राबी होने लगे।

ऋषि-सन्तानों ने अपने त्यौहारों को बिल्कुल तिलाञ्जलि दे डाली। होली और दीवाली के स्थान पर इन्होंने ताज़ियेदारी को अपना त्यौहार बना लिया। इनकी स्त्रियां भी मर्सिया गाने लगीं और इमाम हसनहुसेन कह कर सीना पीटने लगीं। गोरों ने इस त्यौहार का नाम "कुली क्रिसमस" रख दिया और इसी ताज़ियेदारी के अवसर पर हिन्दुओं को सरकार छुट्टी देने लगी।

मुसलमान और ईसाइयों की तरह हिन्दू भी अपने मृतकों को गाड़ने लगे और उनकी क़ब्रों पर फूल, मिठाई इत्यादि चढ़ाने लगे।

इस देश में हिन्दुओं की जो सन्तान उत्पन्न हुई उनकी अवस्था और भी करुणाजनक होगई। उनमें आर्य संस्कृति का प्रादुर्भाव होना सर्वथा असम्भव था। उनके लिये धर्म कर्म की व्यवस्था देने का कोई साधन न था। मातृ-भाषा का तो कोई ज़िक्र ही न था यहांतक कि और भी किसी प्रकार की शिक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं था। फिर वे विकाश और उन्नति के पथ पर किस प्रकार आगे बढ़ते? अधिकांश बालकों

को निरक्षर ही रहना पड़ा और जिन्हें थोड़ी बहुत शिक्षा पाने का अवसर भी मिला उनके जीवन में पाश्चात्य सभ्यता के निकृष्ट अंशों का समावेश होगया, क्योंकि इस थोड़ी बहुत शिक्षा संचालन का सूत्र भी मिश्नरी पादरियों के हाथ में था। यह थोड़ीसी अंग्रेज़ी लिख पढ़ कर साहिबी ठाठ बाट में रहने लगे। अपने पूर्वजों को कुली और प्यारे भारतवर्ष को कुलियों का देश समझने लगे। ऋषि मुनियों को बनचर मानने, कांटे छुरी से भोजन करने, मांस खाने और मद्य का प्याला पीने में अपना गौरव समझने लगे। इस प्रकार इनकी यह श्रेणी "काले साहब" के नाम से पुकारी जाने लगी। अर्थात् इन्होंने अपने प्राचीन भाव, भाषा, भेस, भोजन और भजन को तिलाञ्जलि देकर कृश्चियन मत की शरण ली।

इन काले साहिबों के लिये वैसी ही स्त्रियों की आवश्यकता हुई। भारतीयों ने तो अपनी कन्याओं को पढ़ाया नहीं था इस-लिये उन कन्याओं में उन काले साहिबों के इच्छानुसार फ़ैशन और बनावट नहीं थी। इसलिये इन काले साहिबों ने उन कन्याओं से विवाह किया जो पापाचारी गोरे और हब्शी स्त्रियों से उत्पन्न हुई थीं।

मुसलमानों की अदूरदर्शिता—नैटाल के हिन्दुओं के पश्चात् गुजरात प्रान्त के कुछ मुसलमान भी व्यापार करने के अभिप्राय से यहां आ पहुँचे। ये हिन्दुओं को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। जिस प्रकार अंग्रेज़ों ने हिन्दुओं का नाम 'कुली' रक्खा था उसी प्रकार इन मुसलमानों ने इनका नाम 'कोलत्र' या 'कोलचा' रक्खा। इतना ही नहीं, प्रत्युत भारतवर्ष की उर्वरा भूमि में उत्पन्न होकर भी यह अपने को अरब निवासी प्रसिद्ध करने में गौरव समझते थे। इनको इण्डियन कहलाने में लज्जा

आती थी। अतः इन्होंने अपनी दूकानों के बोर्डों तक पर 'अरबियन मर्चेन्ट' अङ्कित किया हुआ था।

यह मुसलमान हिन्दुओं को धड़ाधड़ मुसलमान बनाते थे, जब यह अपने मत की महत्ता बतला कर इन हिन्दुओं के दिल को नहीं बदल सकते थे तब उनको धन, ज़मीन और स्त्री का लालच देते थे। कितने ही हिन्दू विवाह के लोभ से मियां बन गये।

यहां मुसलमानों की बड़ी २ आलीशान मसज़िदें हैं और दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती हैं। यहां के प्रचलित मतों में इसलाम का एक ख़ास स्थान है।

ईसाइयत का प्रचार—यहां ईसाइयत का बड़ा ज़ोर है। कई मिशन कार्य कर रहे हैं। केवल एक मिशन के पास लगभग ८० लाख रुपया ईसाइयत को फैलाने के लिये स्थिर * कोष में है। केवल उसके ब्याज से प्रचार होता है।

जैसा कि हम पूर्व कह आये हैं यहां पर अधिकांश शिक्षा ईसाइयों के स्कूलों द्वारा दी जाती है जिनमें मसीह का गुणगान करने के लिये प्रत्येक विद्यार्थी बाधित किया जाता है। युवकों के अन्तःस्थल पर यह भाव कूट २ कर भर दिये जाते हैं कि परमात्मा के स्थान पर पाषाण पूजा, अनेक देवी देवताओं पर अटल विश्वास, नाना प्रकार की घृणित कुरीतियों का पालन और जात-पांत तथा छूत छात से परिवेष्टित पापों का नाम ही हिन्दूधर्म है। अतएव कितने ही नवयुवक अपने प्यारे धर्म के सच्चे स्वरूप का दर्शन न पा सकने के कारण ईसाई होगये

---

* दुर्भाग्यवश भारतवर्ष में संस्थाओं के संचालक स्थाई कोष के लाभ का अनुभव नहीं करते। स्थाई कोष के होने से कार्य-कर्ताओं को यदि कोई चिन्ता होती है तो वह केवल कार्य की, न कि धन की।

और युवतियों के मधुर मसीही गानों से मुग्ध होकर यीशु की शरण में चले गये। हा ! भारत-संतान तेरी यह दुर्दशा !! ऋषि मुनियों के वंशजों का इतना पतन !!!

महात्मा गांधी और हिन्दू-हित—सन् १८९३ में महात्मा गांधी इस देश में पधारे। उस समय हिन्दुओं की हालत यह थी कि मुसलमान और ईसाई उन्हें दिन दहाड़े हड़प रहे थे। और उन्हें मुसलमान और ईसाई बनाते चले जारहे थे, हिन्दुओं में धर्म-प्रचार सम्बन्धी प्रगति को महात्माजी अपने राजनैतिक आन्दोलन के लिये घातक समझते रहे। हिन्दू होने के कारण महात्माजी पर हिन्दुओं को अभिमान तो था किन्तु आपकी मनोवृत्ति का परिचय पाकर हिन्दुओं को निराशा भी अपार हुई। राजनैतिक दृष्टि से आप मुसलमानों को अधिक अपनाते थे। हिन्दू अनाथों की भाँति अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। ४५ वर्षों तक किसी ने इनकी खोज खबर नहीं ली। उनको कोई अवलम्ब नज़र नहीं आता था।

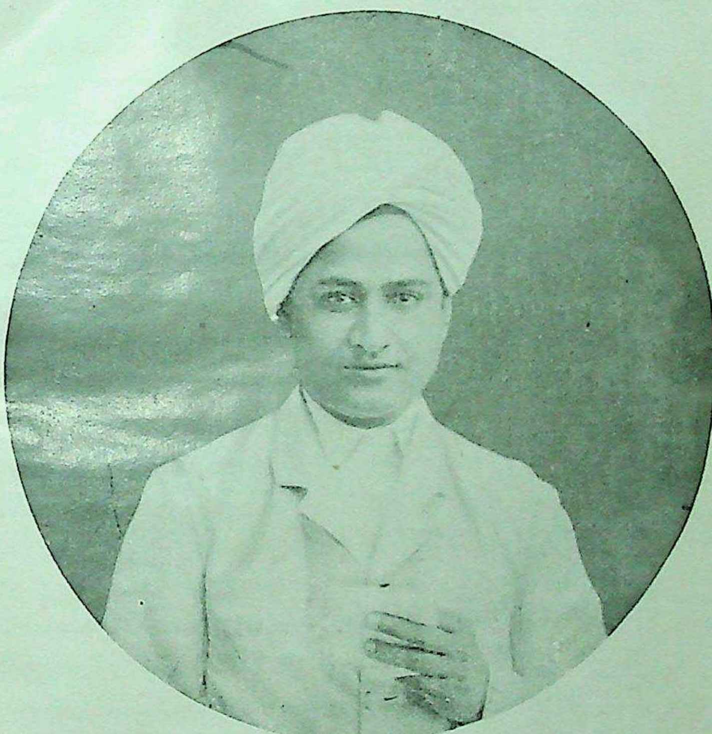
नेटाल में वैदिक-धर्म प्रचार का प्रारम्भ

श्री भाई परमानन्दजी एम. ए. का शुभागमन—आप दरबन ५ अगस्त सन् १९०५ में पहुँचे। आप दक्षिण अफ्रीका में प्रथम वैदिकधर्म प्रचारक थे जिनको महात्मा हंसराज जी ने भेजा था। आपकी उत्कट इच्छा थी कि यहां पर समाज स्थापित किया जावे, परन्तु उस समय ऐसा न हो सका, क्योंकि उस समय वहां पर भिन्न २ सम्प्रदायों के मनुष्य थे और वे ऋषिसमाज स्थापित करना नहीं चाहते थे। भाईजी ने इस विवाद का अन्त करने के लिये "हिन्दू सुधार सभा" के नाम से एक संस्था स्थापित की। आपने दरबन के आस पास भी भ्रमण कर प्रचार किया। आप

के प्रचार से यहां की आर्य-जाति में अधिक उत्साह बढ़ा और कुछ अंग्रेज़ों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा। इसके बाद भाईजी नेटाल की राजधानी मेरिटसवर्ग गये तथा आपने कितने ही मनोहर व्याख्यान उसके समीपवर्ती स्थानों और वहां पर दिये। इन व्याख्यानों में उपस्थिति अच्छी होती थी, धर्म की पिपासा युक्त आर्य-जनता पर खूब प्रभाव पड़ा और अक्टूबर सन् १९०५ में "हिन्दू यंगमैन्स एसोसियेशन" नामक एक संस्था की स्थापना की। मेरिटसवर्ग में आप एक मास ठहर कर लेडीस्मिथ गये वहां पर आपके मेसेरिक हाल में कई अंग्रेज़ी तथा हिन्दी में महत्वपूर्ण व्याख्यान हुए। वहां से आप डंडी गये और भिन्न २ विषयों पर व्याख्यान दिये। नेटाल में तीन मास प्रचार कर आपने ट्रान्सवाल को प्रस्थान किया। वहां आपके कई भाषण हिन्दी और अंग्रेज़ी में हुए। इसके पश्चात् आपके कई भाषण प्रतोरिया में हुए। यहां अंग्रेज़ों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अन्त में आप केपटौन गये और इस प्रकार इन सब स्थानों पर आर्य-आदर्श और प्राचीन वैदिकधर्म का उपदेश कर दक्षिण अफ्रीका से इंगलैण्ड को प्रस्थान किया। आप दक्षिण अफ्रीका में बहुत थोड़े समय ठहरे थे परन्तु आपने सब भागों में भ्रमण कर अच्छा प्रचार किया। आप यहां पर बसी हुई आर्यजाति की दीन हीन दशा को देखकर रोने लगते थे। यहां की जनता अब भी आपको अत्यन्त श्रद्धा से याद किया करती है।

आपके विषय में वहां के एक विद्वान् अंग्रेज़ मि० जी० डब्ल्यू० विलिस ने लिखा था—

"A learned and cultured scholar only a young man of 27 years of age with a grand career, a mission of benevolence before him, which we all hope to trust will be productive of wide spread benefit, especially to his own race." (Natal Witness)



देवतास्वरूप श्री भाई परमानन्दजी एम. ए.; एम. एल. ए.

अर्थात् वह केवल २७ वर्ष की युवावस्था वाला एक सुसंस्कृत विद्वान् है। उसका जीवन बड़ा उच्च और शानदार है उसके सम्मुख परोपकार का मिशन है। हमें आशा और विश्वास है कि उस मिशन से उत्पन्न हुआ लाभ विशेषत: उसकी जाति में विस्तृत रूप से प्रसारित होगा।

श्री स्वामी शंकरानन्दजी महाराज का प्रचार—आप दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का अनुरोध स्वीकार कर २५ सितम्बर सन् १९०९ को दरबन पधारे, आपने दरबन तथा आस पास के स्थानों में भ्रमण कर वैदिकधर्म के महत्व पर बहुत से व्याख्यान दिये। "मातृ-भाषा का ज्ञान" इस विषय पर भी आपके कई भाषण दरबन इत्यादि नगरों के मन्दिरों में हुए। आपने यहां की समस्त आर्य-जाति को एक संगठित रूप में किया जिसके फलस्वरूप यहां के भिन्न २ वर्णों के मनुष्य एक साथ मिलकर धार्मिक कृत्य करने लगे। आपने नेटाल आदि स्थानों में भी घूम २ कर प्रचार किया।

हम पूर्व कह आये हैं कि यहां की आर्य-जाति अपने त्यौहारों को भूल चुकी थी और उनके स्थान पर ताज़ियेदारी में काफ़ी धर्म और धन नष्ट करती थी। श्री स्वामीजी ने इसके विरुद्ध आन्दोलन किया और पूर्णरूप से आर्य-जनता को यह दर्शा दिया कि यह त्यौहार आर्य-जाति का नहीं है। आपके ही उद्योग से दिवाली की छुट्टी सरकार देने लगी। जो व्यय ताज़ियों में किया जाता था अब वह दिवाली पर किया जाने लगा। इस प्रकार दिवाली यहां की आर्य-जाति का एक सार्वजनिक त्यौहार बन गया।

आपने मेरिटसवर्ग में एक वैदिक-आश्रम की स्थापना की। इस आश्रम की ज़मीन और मकानियत का मूल्य लगभग १००० पौंड होगा।

यंगमैन्स वैदिक-सोसायटी दरबन की स्थापना—तामिलियन युवकों ने श्री स्वामीजी के प्रचार से प्रभावित होकर दरबन में यंगमैन्स वैदिक सोसाइटी खोली।

आर्य-युवक सभा दरबन की स्थापना—'आर्य-बाला मित्रमण्डल जो म० सत्यदेव के प्रयत्न से १६ अप्रेल सन् १९१२ को स्थापित हुआ था उसका नाम परिवर्तन करके श्री स्वामीजी ने "आर्य-युवक सभा दरबन" रक्खा, आपने इस सभा की सहायता से यहां कई शुद्धियां भी कीं।

स्वामीजी का ट्रान्सवाल में प्रचार—आप नेटाल से ट्रान्सवाल गये। वहां आपके प्रचार से बहुत से अंग्रेज़ भी प्रभावित हुए। वहां पर आपने एक प्रीतिभोज किया जिसमें अंग्रेज़ और आर्य दोनों सम्मिलित हुए। अंग्रेज़ों में ट्रान्सवाल के मेयर भी थे। इसके पश्चात् आप केपटौन गये और वहां प्रचार किया।

यूरोपियनों के उद्गार—आपने नेटाल के मुख्य २ सरकारी कर्मचारियों से मिलकर आर्य-जाति की अधोगति की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया और उनकी सहानुभूति प्राप्त की। नेटाल के कोलोनियल सेक्रेटरी ने स्वामीजी के विषय में लिखा था:—

"The Swami's stage in Natal has extended over a period of fifteen months, and he has had the opportunity of making himself acquainted with the condition of the Indians residing here, as well of submitting, for the consideration of Government, various suggestions for bringing about improvements in the circumstances in which these people find themselves here. I feel assured that good only will result from the Swami's



श्री स्वामी शंकरानन्दजी महाराज

exertions on behalf of his country men, and I am glad to be able to express my appreciation of his behaviour while in this country" (O. Grady Gubbins, Colonial Secretary for Natal).

अर्थात् स्वामीजी को नेटाल में ठहरे हुए १५ मास से अधिक हो गए हैं और उन्हें अपने आपको यहां बसे हुए भारतीयों की परिस्थिति से परिचित कराने और उनमें सुधार के सम्बन्ध में सरकार के विचारार्थ बहुत सम्मतियां पेश करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस का सुपरिणाम केवल स्वामीजी के घोर परिश्रम का ही फल होगा, जो वे अपने देशवासियों की ओर से कर रहे हैं। उनके इस देश में रहते हुए उनके व्यवहार के प्रति मैं अपनी सराहना प्रकट करते हुए प्रसन्न हूं।

नेटाल के गवर्नर सर मेथ्यू नेथन ने स्वामीजी को एक पत्र में लिखा था:—

"I recognised your desire to help your co-religionists in Natal. I spoke to Dr. Gubbins and am in hopes that the age restrictions in the case of Indian Higher Grade Schools will shortly be removed."

अर्थात् नेटाल में अपने धर्मावलम्बियों की सहायता करने की जो आपकी इच्छा है उसे मैं अनुभव करता हूँ। मैंने डा० ग्यूबिन्स से कह दिया है और मुझे आशा है कि भारतीय हाईस्कूलों में जो आयुसम्बन्धी प्रतिबन्ध है शीघ्र ही हटा दिया जावेगा।

महात्मा गांधी और श्री स्वामी शङ्करानन्द जी—जिस समय स्वामीजी इस देश में आये उस समय महात्मा गांधी ने उनका पूरा आदर सत्कार किया था। महात्माजी के पुत्रों को स्वामीजी

ने यज्ञोपवीत दिलाया और उन दोनों में परस्पर गाढ़ी प्रीति होगई। जेल से महात्माजी ने अपने पुत्र को एक पत्र में लिखा:—

"I have also studied the book Swamiji gave me. I have derived much benefit from its perusal. It makes me more inquisitive the life of Swami Dayanand. I see that the meaning given by Swami Dayanand to the Gayatri and several mantras of the Upanishad is totally different from that given by the Orthodox School. Now which meaning is correct ? I do not know. I hesitate straight away to accept the revolutionary method of interpretation suggested by Swami Dayanand. I would much like to learn all this through the Swamiji's lips. I hope he will not leave before I am out, but if he does leave will he kindly leave all the literature he can or send it from India ? I should also like to know what the orthodox school has said about Swami Dayanand's teaching." (Mahatma Gandhi.)

अर्थात् मैंने स्वामीजी की दी हुई पुस्तक भी पढ़ ली है। मुझे इसके अवलोकन से बड़ा लाभ हुआ है। इससे मेरे अन्दर स्वामी दयानन्द की जीवनी जानने के लिये और भी अधिक उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गई है। मैं देखता हूं कि स्वामी दयानन्द ने गायत्री तथा उपनिषदों के अनेक मन्त्रों के जो अर्थ किये हैं वह कट्टरपन्थियों के किये हुए अर्थों से बिलकुल भिन्न हैं। अब कौनसा अर्थ ठीक है ? मैं नहीं जानता। स्वामी दयानन्द के भाष्य करने की क्रान्तिकारी शैली को अङ्गीकार करने में मुझे एकदम संकोच है। मैं यह सब कुछ स्वामीजी के मुखार-

विन्द से सुनना पसन्द करूंगा। मैं आशा करता हूं कि मेरे जेल से बाहर आने के पूर्व स्वामीजी न जायंगे किन्तु यदि वे जावें ही तो क्या वे उस तमाम साहित्य को, जो सम्भव हो, छोड़ जाने की कृपा करेंगे अथवा उसे भारतवर्ष से जाकर भेज देंगे? मैं जानना चाहता हूं कि स्वामी दयानन्द की शिक्षा के सम्बन्ध में कट्टरपन्थी क्या कहते हैं। (महात्मा गांधी)

मतभेद का कारण—यद्यपि स्वामीजी ने मुसलमानों के विरुद्ध कभी कुछ नहीं कहा था तो भी उन्होंने मेरीत्सबर्ग की सार्वजनिक सभा में ललकार कर कहा था—यदि कोई यह सिद्ध कर दे कि मैं ईसाई और मुसलमानों के विरुद्ध आर्य-जाति को उभाड़ता फिरता हूँ तो मैं अपनी भूल स्वीकार करने और क्षमा मांगने के लिये तैयार हूं। स्वामीजी ने दादा उसमान को एकता के लिये एक महत्वपूर्ण पत्र लिखा; जिसके उत्तर में उन्हें गालियां मिलीं, तो भी महात्मा गांधी के कान भरे जाते थे कि स्वामीजी मुसलमानों के विरुद्ध आर्य-जाति को खड़ा कर रहे हैं, इससे खिन्न होकर महात्मा गांधी ने इङ्गलैण्ड से स्वामीजी को एक पत्र में लिखा:—

"मुझे दुःख होता है कि आप मुसलमानों के विरुद्ध द्वेष-भाव फैला रहे हैं। इसलामी मत के सम्बन्ध में आपका क्या विचार है इस पर मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता, मगर इस-लामी मत पर आपका हमला हिन्दूधर्म के मर्म के प्रतिकूल है। यदि इसी प्रकार हिन्दू मुसलमानों में भेद भाव बना रहेगा तो हिन्दुस्तान को पराधीन ही रहना पड़ेगा"।

इसके उत्तर में स्वामीजी ने लिखा:—

"दक्षिण अफ्रीका के हिन्दू जो संदिग्ध अवस्था में पड़े हुए हैं, इसका कारण आपकी भ्रम पूर्ण शिक्षा और नीति ही है

और फिर भी आप मुसलमानों का पक्ष लेते हैं। मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं कि मैंने अपने व्याख्यानों या लेखों से मुसलमानों को हानि पहुँचाने की चेष्टा की है, किन्तु हिन्दुओं की उन्नति करना मेरा धर्म है और इसी धर्म का मैं पालन कर रहा हूं। आपकी शिक्षा और नीति से हिन्दुओं की हानि ही हुई है और भविष्य में हानि की संभावना भी है। इसमें केवल आपकी ही भूल नहीं है, किन्तु हिन्दुस्तान के बहुत से राजनैतिक नेता इसी प्रवाह में बहे चले जारहे हैं, मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपसे शुद्ध और सात्विक विद्वान् को उस मार्ग पर चलने की सुमति प्रदान करे जिससे हमारी जाति का कल्याण हो। इससे यह न समझें कि आपके लिये मेरे हृदय में जो प्रेम था उस प्रेम के मान की मात्रा कुछ कम होगई है"।

प्रतीत होता है कि स्वामीजी के पत्र का प्रभाव महात्माजी के ऊपर अवश्य पड़ा, क्योंकि कुछ समय के पश्चात् ही एक मुसलमान के प्रश्न उठाने पर १९ मार्च सन् १९१० के इण्डियन ओपिनियन' में महात्माजी ने स्वयं लिखा था "श्री स्वामी शङ्करानन्दजी के विचार की मैंने मीमांसा की थी। उन्होंने काठियावाड़ आर्य्य-मण्डल में कहा था कि जिनके साथ हमें बराबर होकर रहने की इच्छा है उनके बराबर बल भी होना चाहिये। यह मुझे ठीक मालूम हुआ। चार साथियों में अगर तीन हथियारबन्द हों तो चौथे को भी हथियारबन्द होना चाहिये। स्वामीजी की यह युक्ति भी मुझे पसन्द आई। हथियार का अर्थ मैं* "सत्याग्रह करता हूं"।

* सत्याग्रह के अर्थ हैं सत्य पर आरूढ़ होना। इस स्थल पर महात्माजी के इस शब्द के प्रयोग का आशय यह है कि श्री स्वामी शङ्करानन्दजी ने आर्य-जाति को, जो दक्षिण अफ्रीका में अपने धर्म कर्म को तिलाञ्जलि दे चुकी थी, फिर पुनर्जीवित किया और छिन्न-भिन्न जाति

इस प्रकार श्री स्वामी शङ्करानन्दजी अपने प्रचार से समस्त दक्षिण अफ्रीका में वैदिक-धर्म की धाक जमाकर सन् १९१२ में मातृ भूमि को वापिस लौट आये।

श्री स्वामी भवानीदयालजी का प्रचार-कार्य

हिन्दी-प्रचार—सन् १९१४ के आरम्भ में आपने हिन्दी-प्रचार का कार्य आरम्भ किया। इससे पूर्व हिन्दी को यहां कोई स्थान न था। सब से पूर्व जर्मिस्टन में आपने हिन्दी प्रचारिणी सभा और हिन्दी रात्रिपाठशाला की स्थापना की। किन्तु यह स्थानिक कार्य समस्त देश के लिये पर्याप्त कैसे हो सकता था, आवश्यकता थी देशव्यापी आन्दोलन की, अतएव सन् १९१५ में आपने नेटाल तथा ट्रान्सवाल के भिन्न २ नगरों में जाकर हिन्दी के प्रचार के लिये अनेक व्याख्यान दिये। फल यह हुआ कि न्यूकेसिल, डेनहोसर, हार्टिंग स्प्रुट, ग्लंको जंकशन, लेडी-स्मिथ, विनेन, बर्नसाइड इत्यादि स्थानों में नागरी प्रचारिणी सभाएं स्थापित होगईं। हिन्दी की कई पाठशालायें भी खुल गईं। क्लेर स्टेट में 'आर्य हिन्दी-आश्रम' बना। दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की नीव पड़ी, जिसका प्रथम अधि-वेशन १९ जनवरी सन् १९०५ को लेडी स्मिथ में हुआ जिसमें श्री स्वामी भवानीदयालजी महाराज ने प्रतिज्ञा * की थी कि वे अपना शेष जीवन हिन्दी-प्रचार और वैदिक-धर्म की सेवा में व्य-

---

का जो संगठन किया वह भी एक प्रकार का सत्याग्रह था। पाठकगण इस शब्द के विस्तृत अर्थ के महत्व पर ध्यान दें न कि केवल उन संकुचित अर्थों पर जो बहुधा आजकल लिये जाते हैं।

* श्री स्वामी भवानीदयालजी ने उस पवित्र व्रत का पालन करने का भरसक प्रयत्न किया है और उसमें बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की है, जिसके लिये आर्यजगत् उनका कृतज्ञ है।

तीत करेंगे। आपके व्याख्यानों का विषय हिन्दी अथवा मातृ-भाषा और वैदिक-धर्म ही होता था। आपने अपने परिश्रम से २५ दिसम्बर सन् १९१७ को मोरिससवर्ग में द्वितीय हिन्दी साहित्यसम्मेलन कराया। आपकी स्थापित की हुई हिन्दी-प्रचारिणी सभाएं हिन्दी-भाषा के प्रचार के साथ २ वैदिक-धर्म का भी प्रचार करती थीं।

वैदिक-संस्कार—इससे पूर्व यहां विवाहादि संस्कार पौराणिक रीति अनुसार बड़े भद्दे ढंग से होते थे और अन्य जाति वालों के लिये कौतुक के विषय बन जाते थे। इसलिये आपने इस आवश्यकता का अनुभव किया कि वैदिक-विवाह-पद्धति जारी की जावे। आपने इसे प्रचलित किया। वैदिकविधि दिन प्रतिदिन लोकप्रिय होती जाती है।

मृतक जलाने की प्रथा—अज्ञान-वश पहिले वहाँ की आर्य-जनता अपने मुर्दों को गाड़ा करती थी। श्री स्वामीजी के प्रचार से यह कुरीति शनैः २ बिलकुल हट चुकी है। बहुत से अच्छे २ मृतक-दाह स्थान बन चुके हैं। यहाँतक कि यूरोपियन भाइयों ने भी अपने मृतकदाह स्थान बना लिये हैं और वे भी मृतकों का दाहकर्म करने लगे हैं, परन्तु ट्रान्सवाल के कुछ हिन्दू जो अपने को 'मतियाकुनवीं' कहते हैं और अपने को सर आगाखां का अनुयायी भी बतलाते हैं मुसलमानों की भाँति अपने मुर्दों को गाड़ते हैं। कबीरपन्थी, शिवनारायण के अनुयायी आदि भी मृतकों को गाड़ना ही पुण्य समझते हैं। नैटाल में कुछ पौराणिक भी हैं जो अब भी मृतकों को गाड़ने में ही गौरव समझते हैं।

शुद्धि—दिसम्बर सन् १९१६ में श्री स्वामीजी ने आर्य-युवक सभा दरबन की सहायता से पहिले पहल स्प्रीङ्गफील्ड में दो



श्री स्वामी भवानीदयालजी महाराज

मुसलमान युवकों की शुद्धि की । शुद्ध हुये युवकों के साथ ४०० हिन्दुओं ने बैठकर भोजन किया था। इससे मुसलमानों में मज़हबी जोश उमड़ आया और उनके पत्र "Indian Views" (इण्डियन व्यूज़) ने शुद्धि के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा । इस कार्य से बहुतसे हिन्दू भाई भी श्री स्वामीजी से अप्रसन्न होगये थे। आर्य्य-युवक सभा के प्रबन्ध से आपने कई ईसाई युवकों को भी शुद्ध किया था। इस प्रकार वैदिक-धर्म का द्वार सब के लिये खोल दिया गया।

धर्मवीर के सम्पादक—सन् १९१९ में दरबन निवासी श्री रक्षाराम मज्ञा तथा श्री मेहरचन्द ने अपने धन से उक्त पत्र का संचालन किया था। उन्होंने आर्यवीर शहीद पं० लेखरामजी की स्मृति में इस पत्र का नाम 'धर्मवीर' रक्खा । श्री स्वामी भवानीदयालजी ने दो वर्ष तक इस पत्र का सम्पादन किया, परन्तु बाद को श्री मेहरचन्दजी ने अपना विवाह एक पौराणिक की कन्या के साथ पौराणिक रीति से किया और तिस पर भी तुर्रा यह कि उसे आदर्श विवाह के नाम से धर्मवीर में उसके संचालकों द्वारा प्रकाशित किया गया। इससे वहां की आर्य-जनता में बड़ी अशान्ति फैल गई और धर्मवीर को बन्द करना पड़ा।

संन्यासाश्रम में—श्री स्वामी भवानीदयालजी ने १० अप्रेल सन् १९२७ ई० को भारत में 'प्रवासी भवन' का उद्घाटन करते हुये संन्यास-आश्रम में प्रवेश किया। आप दक्षिण अफ्रीका में जन्मे पहले सज्जन हैं जिन्होंने संन्यास-आश्रम में प्रवेश कर दक्षिण अफ्रीका निवासियों को गौरव प्राप्त करने का अवसर दिया है।

सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रचार—श्री स्वामीजी ने सन् १९२८ से सन् १९३० तक पूरे दो वर्ष सार्वदेशिक सभा की

ओर से अवैतनिक रूप में समस्त दक्षिण अफ्रीका में घूम २ कर मौखिक और लेखबद्ध प्रचार किया।

श्री पं० ईश्वरदत्तजी विद्यालङ्कार का प्रचार—आप गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक हैं। आप यहां सन् १९२१ में पधारे थे। दरबन के आसपास और नेटाल के लगभग सभी मुख्य स्थानों में आपके भाषण हुये। आपके व्याख्यान तीन २ घण्टे तक लगातार होते थे और उपस्थिति भी अच्छी होती थी। आर्यों के अतिरिक्त अन्य मतानुयायी भी सम्मिलित होते थे। फलस्वरूप विद्यार्थियों ने भी आपको व्याख्यान देने के लिये कई बार निमन्त्रित किया और आपने वहां पर भी वैदिक-धर्म की महत्ता पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये। म० सोराबजी रुश्तमजी तथा म० अमर झावेरी नेटाल इण्डियन कांग्रेस के कार्यकर्ता भी प्रशंसित पण्डितजी के सभी व्याख्यानों में उपस्थित रहते थे।

रामायण की कथा—पण्डितजी दरबन में रामायण की कथा कहा करते थे। आपकी प्रचारशैली आदर्श थी। आप यहां के अन्य मतानुयायियों के भी श्रद्धापात्र बन गये।

म० साईदास या सत्यव्रत—यह सज्जन जिनका नाम पंडितजी ने बदल कर सत्यव्रत रक्खा था प्रशंसित पंडितजी के व्याख्यानों से प्रभावित होकर २५०) मासिक वेतन के पद से त्यागपत्र देकर पंडितजी के साथ प्रचार में सहायता देने के लिये और इनसे विद्या सीखने के लिये हो लिये। जब म० सत्यव्रतजी पंडितजी के साथ अमेरिका गये थे तो वहां दुर्भाग्यवश उनका देहान्त हो गया।

शारीरिक खेल—श्री पण्डितजी ने वे सारे शारीरिक खेल, जिन्हें प्रो० राममूर्ति करते थे, वहाँ पर दिखाये। उनके अतिरिक्त अंधेरी कोठरी में घोड़े के एक बाल को तीर से काटना,

शब्दभेदी और सप्तभेदी बाण चलाना, सभा में बैठे हुये विशाल जनसमूह में ऊपर टँगे हुये पुष्पहार को बाण से छेद कर सभा के प्रधान को पहना देना आपके लिये साधारण बात थी।

श्री ठाकुर प्रवीणसिंहजी—आप २३ फरवरी सन् १९२२ को पूर्वीय अफ्रीका से यहाँ पधारे। आपने नेटाल के मुख्य २ स्थानों में जाकर भजन द्वारा वैदिक-धर्म का प्रचार किया। १५ जुलाई सन् १९२२ को आप देश लौट आये।

१९ मई सन् १९२७ को आप यहाँ फिर आगये और रामायण सभा की ओर से संचालित हिन्दी पाठशाला में हिन्दी तथा संस्कृत पढ़ाने लगे। पढ़ाने के अतिरिक्त आप उत्सवों पर जाकर वैदिक-धर्म का प्रचार भी करते थे।

श्री डा० भगतरामजी सहगल का प्रचार और आर्यसमाजों की स्थापना—आप ३ फर्वरी सन् १९२९ को पूर्वीय अफ्रीका से यहाँ पधारे। आपने मुख्यतः दरबन, मेरिट्सबर्ग, सदरलैण्ड, पेरिश पेस्टन स्टागर, लेडीस्मिथ, डंडी, डेमहोसर, सीकोलेक, केटोमेनर तथा अन्य कई स्थानों पर प्रचार किया। आपके प्रचार के फलस्वरूप मेरिट्सबर्ग, सदरलैण्ड, पोर्टशेपस्टन, स्टागर आदि स्थानों में आर्यसमाज स्थापित हुये। आपने दक्षिण अफ्रीका में जितनी आर्य्यसमाजें स्थापित कीं उतनी अन्य किसी प्रचारक ने नहीं कीं।

स्त्री-आर्यसमाज दरबन—श्री डाक्टजी ने अपनी धर्मपत्नी (जो आपके साथ थीं) की सहायता से दरबन में एक स्त्री-आर्यसमाज की स्थापना की। यह स्त्री-समाज खूब उन्नति कर रहा है।

शुद्धि—श्री डाक्टजी ने प० एम० पुत्तु की सहायता से एक जन्म की मुसलमान स्त्री की शुद्धि करके उसे वैदिक-धर्म में दीक्षित किया।

आपने दक्षिण अफ्रीका में इस प्रकार प्रचार कर ७ जुलाई सन् १९२९ को सपरिवार इंगलैण्ड को प्रस्थान किया।

नेटाल आर्यप्रतिनिधि सभा में सम्मिलित संस्थाएं

आर्ययुवक सभा दरबन—इस सभा का आरम्भ एक हिन्दी रात्रिपाठशाला के रूप में हुआ था। इसमें कितने ही नवयुवक हिन्दी-शिक्षा प्राप्त करते थे। इस सब का श्रेय म० सत्यदेवजी को है। आपकी इच्छा थी कि इन विद्यार्थियों में एक सभा स्थापित कर के वैदिकधर्म का प्रचार भी किया जावे। इसी विचारानुसार १९ अप्रेल सन् १९१२ को आर्य-बाल मित्रमण्डल की स्थापना हुई। दो मास पश्चात् श्री स्वामी शंकरानन्दजी ने मण्डल का नाम परिवर्तन कर 'आर्य-युवक सभा' रक्खा। इस सभा के साप्ताहिक अधिवेशन तथा वार्षिकोत्सव नियमपूर्वक बड़े समारोह के साथ मनाये जाते हैं।

इस सभा का मुख्य कार्य आर्य-जाति के लालों को विधर्मी होने से बचाना रहा है। इस सभा ने म० जंगबहादुरसिंह डी० सी० एस० को, जो जर्मनी से डाक्टरी की उपाधि प्राप्त करके आये थे, और म० परसराम ने एक शिक्षित युवक को ईसाई होने से बचाया था। अब तक यह दोनों सज्जन आर्य-जाति के अन्दर ही हैं।

इस सभा ने समय समय पर आर्यावर्त से गये हुये उपदेशकों को भी प्रचार में बड़ी सहायता दी है।

आर्य अनाथ-आश्रम दरबन—१ मई सन् १९२१ को इस आश्रम की स्थापना हुई। म० सत्यभूषणजी ने इस आश्रम की बड़ी सेवा की है। इस आश्रम में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब मतानुयायी आश्रय पाते हैं। इस आश्रम को नेटाल प्रान्तीय सरकार की ओर से १०० पौण्ड वार्षिक सहायता मिलती है।

आश्रम-निरीक्षण—यहां के नेताओं और सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त आर्यावर्त से गए हुए सर हबीबुल्ला तथा श्रीमती सरोजनी नायडू ने भी इस आश्रम का निरीक्षण किया और मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

आर्य-पाठशाला दरबन—इस पाठशाला में सरकार की ओर से निश्चित पाठविधि के अनुसार वर्णमाला से लेकर चौथी कक्षा तक शिक्षा दी जाती है। पाठशाला को सरकारी सहायता भी मिलती है, इसमें लगभग २०० बालक पढ़ते हैं।

आर्य सेवा-दल दरबन—यहां एक आर्य सेवा-दल की भी स्थापना हो चुकी है।

भूतपूर्व नागरी प्रचारिणी सभा वर्तमान आर्यसमाज लेडस्मिथ—लेडस्मिथ दरबन से दक्षिण दिशा में ७२९ मिल के फ़ासले पर है। प्रथम १९ अप्रेल सन् १९१९ को यहां नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई थी। चूंकि सभा का प्रत्येक कार्य आर्यसमाज के सिद्धान्तानुसार होता था इसलिये ३ अगस्त सन् १९१९ को इस सभा का नाम आर्यसमाज कर दिया गया। नेटाल प्रान्त में स्थापित यह दूसरी आर्यसमाज थी। सन् १९२५ में श्रीमद्दयानन्द जन्मशताब्दी महोत्सव भी वहीं मनाया गया था।

इस समाज के भूतपूर्व प्रधान म० मिठुनलालजी ने समाज के अधीन एक रात्रिपाठशाला खोली थी जिसमें लड़के और लड़कियों को गुजराती और हिन्दी पढ़ाई जाती है। भाषाओं के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है।

समाज के प्रयत्न से होरीनासपुर में एक अंग्रेज़ी, हिन्दी पाठशाला भी चल रही है। म० रघुनाथसिंहजी इस समाज के जीवन हैं।

आर्ययुवक-मंडल सिवकौलेक—सिवकौलेक दरबन से उत्तर दिशा में पांच मील की दूरी पर अमोनी नदी के तट पर स्थित है। यहां पर अधिकतर मनुष्य शाक भाजी की खेती करते हैं। यहां पर मण्डल ने एक रात्रिपाठशाला खोल रक्खी है।

आर्यसमाज पेसेसलेयर भूतपूर्व नागरी-हितैषिणी सभा—पेसेसलेयर मेरिट्सबर्ग से ७ मील की दूरी पर एक रमणीक स्थान है। सन् १९२२ में यहां के आर्यों के उद्योग से नागरी हितैषिणी सभा की स्थापना हुई। १५ अक्टूबर सन् १९२४ को सभा ने एक पाठशाला स्थापित की। इसमें लगभग ६० बालक बालिकाएं शिक्षा पाती हैं।

अप्रेल सन् १९२६ में डा० भगतरामजी सहगल प्रचारार्थ यहां पधारे। आपके उपदेश से सभा ने इसका नाम आर्यसमाज रक्खा। यह समाज प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। इसमें ३० के लगभग सदस्य हैं।

आर्यसमाज केटोमेनर भूतपूर्व श्री सत्य वैदिक-धर्म जिज्ञासी सभा—केटोमेनर दरबन से चार मील की दूरी पर है। २० सितम्बर सन् १९२२ को यहाँ के कई सज्जनों के उद्योग से श्री सत्य वैदिक जिज्ञासी सभा की स्थापना हुई। २४ फरवरी सन् १९२६ को डा० भगतरामजी सहगल के उपदेश से सभा का नाम आर्यसमाज कर दिया गया।

इस समाज के अन्तर्गत एक अनाथाश्रम और एक हिन्दी अंग्रेज़ी पाठशाला है। यहाँ एक रात्रिपाठशाला भी है जिसमें पुत्र और पुत्रियाँ पढ़ती हैं।

आर्यसमाज दरबन—दरबन नेटाल प्रांत में सबसे श्रेष्ठ नगर तथा बड़ा बन्दर है। दरबन में अधिकतर भारतवासियों की बस्ती है।

दरबन आर्यसमाज की स्थापना फरवरी सन् १९२७ में हुई। समाज का कार्य यहाँ सुचारु-रूप से चल रहा है। इसमें लगभग ६० सदस्य हैं।

यंगमैन्स आर्यसमाज दरबन—यह समाज दरबन निवासी आर्ययुवकों के उद्योग से २८ फरवरी १९२८ को स्थापित हुआ। इसमें लगभग ५० सदस्य हैं।

आर्यसमाज सिडनम—सिडनम दरबन से तीन मील की दूरी पर है। यहां पर अधिकतर वह लोग रहते हैं जो व्यापार आदि करते हैं। २६ फरवरी सन् १९२६ को म० सत्यदेवजी के उद्योग से यहां आर्यसमाज की स्थापना हुई। इसमें लगभग ३० सदस्य हैं।

वेद-धर्म सभा मेरिट्सवर्ग—मेरिट्सवर्ग नेटाल की राजधानी है और दरबन से ६० मील की दूरी पर है। सन् १९०४ में भाई परमानन्दजी ने यहां हिन्दू यंगमैन्स एसोसियेशन स्थापित किया था। १० अप्रेल सन् १९०८ को स्वामी शङ्करानन्दजी ने इस एसोसियेशन का नाम 'वेदधर्म सभा' रक्खा।

इस सभा द्वारा वैदिक-आश्रम के लिये एक भवन निर्मित हुआ है जिसकी लागत १००० पौंड के लगभग है।

सभा ने वैदिक पर्वों का प्रचार कर आर्य-जाति में से मोहर्रम तथा क्रिसमस मनाने की भावना को कम कर दिया है।

सन् १९२३ में विद्याप्रचारिणी सभा की स्थापना हुई है और तब से इस आश्रम के आधीन कई हिन्दी पाठशालाएं हैं।

श्री वैदिक-विद्या प्रचारक सभा पेट्रीच—इस सभा के आधीन एक पाठशाला है। इस सभा के लगभग ७० सदस्य हैं।

शुद्धि-सभा पेट्रून्च—यह शुद्धि सभा सन् १६३० में स्थापित हुई है।

आर्यसमाज पेट्रून्च—१ मई सन् १६२६ को डा० सहगलजी के उद्योग से इसकी स्थापना हुई। इसमें लगभग २० सदस्य हैं। एक छोटासा समाजभवन भी बन गया है।

स्त्री-आर्यसमाज मेरिट्सबर्ग—११ अगस्त सन् १६२६ को श्रीमती आर० पी० महाराज के उद्योग से यहां पर स्त्री आर्यसमाज की स्थापना हुई है। इस समाज में लगभग ३० सदस्या हैं।

आर्यसमाज डेन्हौसर—डेन्हौसर दरबन के उत्तर में दरबन से २४६ मील की दूरी पर है। यहाँ पर अधिकतर लोग कोयलों की खानों में काम करते हैं। कुछ व्यापारी भी हैं। ५ मई सन् १६२६ को यहाँ पर श्री स्वामी भवानीदयालजी के उद्योग से आर्यसमाज की स्थापना हुई। इस समाज के लगभग २५ सदस्य हैं, समाज के अन्तर्गत एक हिन्दी रात्रि-पाठशाला है। इस समाज के जीवन म० रामसुन्दर पाठक हैं।

आर्यसमाज स्टागर—स्टागर दरबन से ईषाण कोण की ओर ५२ मील की दूरी पर है। यहाँ पर अधिकतर लोग गन्ने की खेती करते हैं। नेटाल के अन्य स्थानों के निवासियों से यहाँ की जनता अधिक धनी है।

२३ जून सन् १६२६ को डा० भगतरामजी सहगल के उद्योग से यहाँ आर्यसमाज की स्थापना हुई।

आर्यसमाज पोर्ट शेयस्टन—पोर्ट शेयस्टन दरबन से ईषाण कोण की ओर ७६ मील की दूरी पर है। यहां पर ईसाइयों का

अधिक प्रचार है। यहाँ पर भारतीय अधिकतर तम्बाकू तथा सागभाजी की खेती करते हैं।

डा० भगतरामजी सहगल के प्रचार के फलस्वरूप १४ जुलाई सन् १९२९ को यहाँ आर्यसमाज की स्थापना हुई। यहाँ लगभग ३० सदस्य हैं। इस समाज ने कई शुद्धियाँ भी की हैं।

सदस्य संख्या—नेटाल आर्यप्रतिनिधि सभा में सम्मिलित संस्थाओं के सदस्यों की संख्या लगभग ४८० और सहायक सदस्यों की संख्या लगभग २५० है।

आर्यसमाज के कार्य का प्रभाव—नेटाल में अधिकांश संस्थाएं ऐसी हैं जो वैदिकधर्म और आर्यसमाज के सिद्धान्तानुसार कार्य करती हुई भी आर्यसमाज नाम न होने से इस प्रतिनिधि सभा में सम्मिलित नहीं हैं। इसलिये आर्यों की ठीक ठीक संख्या निश्चित करनी कठिन है। इतना निःसंकोच कहा जा सकता है कि समस्त हिन्दू जाति को आर्य्यसमाज से श्रद्धा तथा प्रेम है।

महर्षि दयानन्द जन्मशताब्दी महोत्सव और नेटाल आर्यप्रतिनिधि सभा की स्थापना—इस उत्सव को दक्षिण अफ्रीका में १६ से २२ फरवरी सन् १९२५ तक यहां की आर्यजनता ने बड़े उत्साह के साथ मनाया था। उसी समय दक्षिण अफ्रीका के समस्त आर्यों को संगठित करने के लिये २१ फरवरी सन् १९२५ को नेटाल आर्यप्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई।

नेटाल आर्य-प्रतिनिधि सभा का सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा देहली में सम्मिलित होना—२३ अक्टूबर सन् १९२७ को नेटाल आर्य्यप्रतिनिधि सभा आर्या-वर्त्त की सार्वदेशिक सभा में सम्मिलित होगई है।

मद्रासियों की जातिबन्धन की घातकता तथा उपदेशकों का सफलता प्राप्ति के लिये भाषाओं का ज्ञान—यहाँ की समस्त आर्य-जाति में सब से अधिक शोचनीय अवस्था मद्रासियों की है। यह लोग मांस और मदिरा खूब उड़ाते हैं। और यूरोपियनों और हब्शियों को तो अपने बर्तनों में खाना खिला सकते हैं, इसमें कोई हानि नहीं, परन्तु अछूतों की परछाईं से भी उनकी जाति दुम दबा कर भागती है। इनके अमानुषिक व्यवहार से व्याकुल होकर ये मसीह के झण्डे के नीचे चले जाते हैं और फिर इन पौराणिक मद्रासियों की खूब खबर लेते हैं। इसलिये इन लोगों को समझाने के लिये तामिल और अंग्रेज़ी जानना बहुत आवश्यक है।

लड़के लड़कियों की सम्मिलित शिक्षा की घातकता—हमें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि दक्षिण अफ्रीका के आर्यसमाजों द्वारा संचालित की हुई अधिकतर पाठशालाओं में लड़के लड़कियों को सम्मिलित शिक्षा (co-education) दी जाती है। हम अपने भाइयों को सावधान और सचेत करना चाहते हैं कि वे अविलम्ब ही इस अवैदिक प्रथा को बन्द करदें वरना उनको बाद को पश्चात्ताप करना पड़ेगा। यूरोप तथा अमरीका में इस प्रचलित शिक्षा के भयंकर दुष्परिणाम पाठकों के सन्मुख हैं। हमें इस विषय में अधिक कहना नहीं है। आशा है कि दक्षिण अफ्रीका के आर्य-भाई सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास से यथोचित लाभ उठायेंगे और इस प्रथा को शीघ्र दूर करेंगे।

आर्यसमाज मन्दिर—दक्षिण अफ्रीका में यद्यपि आर्यसमाज का सन्देश पहुँचे २५ वर्ष से अधिक होगये, परन्तु वहाँ पर समाजमन्दिरों के निर्माण की प्रगति बड़ी मंद है। यह बात

वहाँ की आर्य-जनता के लिये बड़ी लज्जास्पद है। हमें पूर्ण आशा है कि वहाँ की श्रद्धालु आर्य्य-जनता इस अभाव की पूर्ति कर अपने प्रेम और त्याग का परिचय देगी।

शिक्षा की अवस्था—इस देश में गोरे और भारतीय विद्यार्थियों के लिये पृथक् २ पाठशालाएं हैं। कोई भी भारतीय विद्यार्थी किसी भी दशा में योरोपियन पाठशालाओं में प्रविष्ट नहीं हो सकता। भारतीयों के लिये नेटाल में दो प्रकार की पाठशालायें हैं—एक तो वह जो सरकारी पाठशालाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं और दूसरी वह जो सरकारी सहायता प्राप्त पाठशालायें कहलाती हैं। भारतीयों के लिये केवल दरबन में एक हाई-ग्रेड स्कूल है जिसमें मेट्रिकुलेशन तक शिक्षा दी जाती है। अन्य पाठशालाओं में चौथी, पाँचवीं और छठी श्रेणी तक ही पढ़ाई होती है। ट्रान्सवाल प्रांत छोड़कर और कहीं भी इन पाठशालाओं में अंग्रेज़ी के अतिरिक्त देशी भाषाओं के पढ़ने की कोई व्यवस्था नहीं है जिसकी ज़िम्मेवारी माननीय श्रीनिवास शास्त्री तथा मि० कैलाशप्रसाद किचलू पर है। इन सज्जनों ने किम्बर्ले कांग्रेस में देशी भाषा के पढ़ाने का विरोध किया था। यहाँ की यह सब शिक्षा अधिकांश में ईसाई संस्थाओं द्वारा दी जाती है। कन्या-पाठशालाओं का संचालन सूत्र भी ईसाई मिशन के ही अधीन है। हिन्दू-जाति की भी बहुतसी कन्याएं इन पाठशालाओं में पढ़ती हैं।

पाठकगण स्वयं विचारिये कि जिस जाति के बालक और बालिकाओं के भाव, भाषा, भेष, भोजन और भजन पर दूसरों की सभ्यता की मुहर बचपन में ही लग गई हो उनसे भविष्य में क्या यह आशा की जा सकती है कि वे अपनी जातीयता, धर्म और मान-मर्यादा की रक्षा कर सकेंगे ?

क्या हम आशा करें कि दक्षिण अफ्रीका के भारतीय, खास कर आर्य और आर्यावर्त से जाने वाले प्रचारक वहाँ के निवासियों के सन्मुख अपनी उच्च शिक्षा का आदर्श रक्खेंगे और उसे कार्य्यरूप में परिणित करने का यथाशक्ति यत्न करेंगे ?

ब्रिटिश पूर्वीय अफ्रीका

पूर्वीय अफ्रीका के प्रान्त और उनमें भारतीयों की संख्या—

नाम प्रान्त	भारतीयों की संख्या	वर्ष
केनिया	३६,६४४	१९३२
जेञ्जीवार	१५,२६४	१९३१
युगेन्डा	१५,०७७	१९३१
टेंगेनिका	३२,४२२	१९३१

भारतीयों का आगमन—अन्य उपनिवेशों की भांति यहां पर सब भारतीय कुली के रूप में नहीं आये। अधिकांश वे यहां व्यापारी बनकर अथवा दफ़्तरों में नौकरी करने आये थे।

आर्यसमाज की स्थापना—इन देशों में पहिले पहल दफ़्तरों के प्रत्येक विभाग में हिन्दू नवयुवक ही भर्ती किये गये। जो शिक्षित नवयुवक भारत से यहां आता उसे शीघ्र ही अच्छे वेतन पर कोई रोज़गार मिल जाता। इन नवयुवकों का सम्पर्क यूरोपियन लोगों से अधिक होने और उनके रहन सहन के तरीक़े देखने से उनके आचार बिगड़ने की अधिक सम्भावना थी। उनके लिये धर्म कर्म की शिक्षा का प्रबन्ध न था। ऐसी दशा में या तो वे ईसाई बनते और या उनका जीवन दुराचारी और कुत्सित बन जाता।

सौभाग्य से कुछ आर्य्यसमाजी विचार के महानुभाव भी यहाँ उच्च पदों पर नियत होकर आये। उन्होंने इन नवयुवकों को अपनी प्यारी व प्राचीन सभ्यता को तिलाञ्जलि देते हुये देख यह अनुभव किया कि यहां आर्यसमाज की स्थापना कर नवयुवकों के सुधार का कार्य्य किया जावे।

अतः ३ अगस्त सन् १६०३ को नैरोबी नगर में, जो केनिया प्रांत की राजधानी है, आर्य्यसमाज स्थापित हुई। इस समाज का मन्दिर वड़ा विशाल और सुन्दर है। आर्यसमाज की समस्त इमारतों का मूल्य तीन लाख * शिलिंग है।

नैरोबी समाज में आर्य-सभासदों की संख्या—इस वर्ष यहां पर रजिस्टर्ड आर्य्य-सभासद् और आर्य-सहायकों की संख्या १८५ है। जिनका मासिक चन्दा इस समाज को ४०० शिलिंग प्राप्त होता है। साप्ताहिक अधिवेशन नियमपूर्वक ६॥ से ११॥ बजे तक दिन में बड़े उत्साह के साथ होते हैं।

समाज के आधीन संस्थाएं।

पुस्तकालय—आर्य-समाज ने एक पुस्तकालय खोला हुआ है जिसमें हिन्दी, उर्दू, गुजराती, अंग्रेज़ी और गुरमुखी में २००० की लगभग पुस्तकें हैं जिनका मूल्य क़रीबन आठ हज़ार शिलिंग है।

वाचनालय—इसमें भारत से उक्त भाषाओं के दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र मंगाये जाते हैं।

विश्रामगृह—आर्यसमाज के आधीन एक दो मंजिला विश्रामगृह है जिसमें १३ कमरे हैं। इसमें प्रत्येक मनुष्य विना किसी

* १ शिलिंग लगभग ग्यारह आना के बराबर होता है।

सांप्रदायिक और जातीय भेद-भाव के ठहर सकता है। भारतवर्ष तथा अन्य देशों से आये हुये उन भाइयों के लिये, जिनके ठहरने का अन्य कोई प्रबन्ध नहीं होता, यह विश्रामगृह बड़ा उपयोगी प्रमाणित हो रहा है। यहाँ पर कोई किराया इत्यादि नहीं लिया जाता है। पानी और रोशनी का अच्छा प्रबन्ध है।

आर्य स्त्री-समाज—कई वर्षों से यहाँ स्त्री-समाज भी जारी है। इसमें ५० सदस्या हैं और मासिक चन्दा ५० शिलिंग हो जाता है। इस समाज के सत्संग मंगलवार को होते हैं। यह समाज स्त्रियों में बड़ा अच्छा प्रचार कर रहा है।

आर्य-युवकसभा—यह सभा युवकों ने सन् १९१८ में खोली है। इस सभा में कई बार शिथिलता और कई बार जीवन आचुका है। अब तक इसके पांच वार्षिक उत्सव हो चुके हैं। श्री प्रो० रामदेवजी गुरुकुल कांगड़ी धन एकत्रित करने जब यहाँ आये थे तो उस समय इस सभा ने एक सहस्र शिलिंग उनकी सेवा में भेट किया था ताकि उससे गुरुकुलभूमि में एक कमरा उनकी ओर से बनवा दिया जावे।

आर्य-कन्या पाठशाला—समाज के आधीन सब से बड़ी संस्था आर्य कन्यापाठशाला है। इस पाठशाला का प्रबन्ध आर्यसमाज की अन्तरंगसभा के आधीन है जिसने अपनी सुगमता के लिये एक शिक्षापटल बना दिया है। इस पाठशाला में १० वीं श्रेणी तक शिक्षा दी जाती है। अफ्रीका में यह कन्या-पाठशाला सबसे बड़ी है। इस पाठशाला में हिन्दी, गुजराती, अंग्रेज़ी के अतिरिक्त सिलाई, बाजा, पाकशास्त्र, चर्खा और मुख्य कर धार्मिक-शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता है। कन्याओं की शारीरिक अवस्था पर भी काफ़ी ध्यान दिया जाता है जिसके लिये उनको कवायद और लाठी चलाना भी सिखाया जाता है। इस समय पाठशाला में १५०

कन्याएँ हैं। इस वर्ष पाठशाला का वार्षिक आनुमानिक व्यय १६,००० शिलिंग पास हुआ है। इस पाठशाला का परीक्षा परिणाम भी बड़ा अच्छा रहता है। यहां पर कन्याओं को भारत में यू. पी. की हिन्दी परीक्षाएं भी दिलाई जाती है। यहाँ की एक कन्या ने यू. पी. की विनोदनी परीक्षा में प्रथम स्थान पाया है। इस पाठशाला की इमारत की लागत ६,००० शिलिंग है।

आर्यवीर दल और बैंड—जनवरी सन् १६२८ में आर्यसमाज नैरोबी ने आर्यवीर दल की स्थापना की। इस दल में ४० आर्यवीर हैं। इनकी साप्ताहिक कवायद होती है। आरंभ में इस दल ने आर्यसमाज की बड़ी सेवा की थी। अब इसके बहुतसे सदस्य नौकरियों से पृथक् हो जाने के कारण वापिस भारत चले गये हैं।

इस दल का एक आर्य्यवीर बेंड भी है। इसका कार्य्य बड़ा प्रशंसनीय है।

हिन्दी रात्रि-पाठशाला—१ जुलाई सन् १६३३ से नैरोबी समाज ने एक हिन्दी रात्रि-पाठशाला खोली है।

आर्यप्रतिनिधि सभा ब्रिटिश पूर्वीय अफ्रीका—नैरोबी समाज की इमारत में ही आर्य-प्रतिनिधि सभा का भी कार्यालय है।

भारतवर्ष से प्रचारार्थ गये हुये उपदेशक—सन् १६०४ में श्री पं० पूर्णानन्दजी, सन् १६१२ में दोबारा श्री पं० पूर्णानन्दजी, और सन् १६१३ में श्री पं० महारानीशंकरजी आर्य्यप्रतिनिधि सभा बम्बई, सन् १६२१ में श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज, सन् १६२२ में तीसरी बार श्री पं० पूर्णानन्दजी, सन् १६२७ में

श्री पं० बालकृष्ण शर्मा तथा श्री पं० मणिशंकरजी (आर्य-प्रतिनिधि सभा बम्बई)।

सन् १९२९ में श्री पं० सत्यपालजी सिद्धान्तालङ्कार, सन् १९३३ में श्री महता जैमिनीजी।

श्री प्रो० ईश्वरदत्तजी विद्यालंकार ने कई प्रभावशाली व्याख्यान दिये और शरीर संबन्धी खेल दिखाये, जिससे प्रसन्न होकर यहाँ के गर्वनर ने आपको एक स्वर्णपदक भेंट किया था।

श्री डाक्टर भगतरामजी सहगल ने कई समाजें स्थापित कर बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया।

इनके अतिरिक्त श्री ठा० प्रवीणसिंहजी, श्री पं० रविदत्तजी तथा श्री पं० माथुर शर्मा ने भी प्रचार किया।

आर्यसमाज किसूमू

किसूमू ब्रिटिश पूर्वीय अफ्रीका में विक्टोरिया झील के किनारे पर एक नगर है। मोम्बासा बन्दरगाह से वहाँ को सीधी रेल गई है।

किसूमू आर्यसमाज की स्थापना—सन् १९१० में श्री ला० मथुरादासजी खजाञ्ची युगेन्डा रेलवे के प्रयत्न से और स्वर्गवासी श्री पं० पूर्णानन्दजी के हाथों से इस समाज की स्थापना हुई थी।

समाज की दानशीलता—उस समय से लेकर अब तक इस समाज ने गुरुकुल कांगड़ी को मुख्यता तथा अन्य भारतीय संस्थाओं को लगभग साठ सहस्र रुपया एकत्रित करके दान दिया है।

समाजमन्दिर—आर्य्यसमाज मन्दिर बड़ा अच्छा लगभग तीस सहस्र शिलिंग की लागत का बना हुआ है।

आर्य-पुत्री पाठशाला—पाठशाला सुचारु-रूप से चल रही है। पाठशाला भवन पर समाज का लगभग तीस सहस्र शिलिंग व्यय हुआ है। अध्यापिकाओं के रहने के लिये गृह भी उसी में बने हुये हैं जिनकी लागत लगभग बीस सहस्र शिलिंग है।

श्रद्धानंद आश्रम—यह भवन सन् १६२६ में बनकर तैयार हुआ है। इसकी लागत लगभग ४० सहस्र शिलिंग है। इस भवन में एक ओर विदेशों से आये हुये अतिथि, साधु महात्मा तथा उपदेशकों के ठहरने के लिये एक बड़ा सुन्दर कमरा बना हुआ है।

आर्यसमाज मुबाली (युगान्डा)

मुबाली ब्रिटिश पूर्वीय अफ्रीका के युगान्डा प्रान्त में एक क़स्बा है। यह किसूसू और कम्पाला के मध्य में स्थित है।

आर्यसमाज की स्थापना तथा सदस्य संख्या—इस समाज की स्थापना १२ मई सन् १६२८ को हुई थी। इसमें ३० के लगभग सभासद् हैं।

समाज का कार्य—यहां पर समाजमन्दिर और एक पाठशाला भी है। समाज का कार्य्य प्रशंसनीय ढङ्ग से हो रहा है।

आर्यसमाज मोम्बासा।

मोम्बासा केनिया कालोनी का बड़ा प्रसिद्ध बन्दरगाह है।

आर्यसमाज का कार्य—यहां आर्यसमाज का मन्दिर है। इस वर्ष यहां श्री महता जैमिनीजी ने प्रचार किया।

आर्यसमाज जंज़ीबार।

जंज़ीबार पूर्वीय अफ्रीका के पूर्व में केनिया कालोनी के आधीन एक छोटा सा द्वीप है। इस द्वीप में जंज़ीबार नाम का ही बन्दरगाह है। यहाँ पर लौंग और दालचीनी की उपज बहुतायत से होती है। यह स्थान व्यापार का केन्द्र है। यह द्वीप पहिले एक सुलतान के आधीन था परन्तु अब अंग्रेज़ों के अधिकार में है।

आर्यसमाज की स्थापना—इस आर्यसमाज की स्थापना सन् १९०७ में श्री भानजी दयालजी, श्री रावजी नानजी, श्री गोकुलदासजी तथा श्री हंसराजजी इत्यादि ने की थी।

पाठकों को यह जान कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि जिस स्थान पर आज यहाँ आर्यसमाज मन्दिर बना हुआ है उसी स्थान पर किसी समय दासों (गुलामों) की बिक्री होती थी। और उनका वध किया जाता था, परन्तु आज उस स्थान से स्वतन्त्रता का उपदेश होता है और प्रभु की वेदवाणी द्वारा यज्ञ भी होते हैं।

आर्यसमाज-मन्दिर और अतिथिगृह—यहाँ समाजमन्दिर बड़ा अच्छा है और उसी में अतिथियों के ठहरने के लिये एक अतिथिगृह भी अलहदा बना हुआ है।

निःशुल्क कन्यापाठशाला—इस कन्या पाठशाला की उत्तमता यह है कि इसमें खोजा * जाति की लड़कियाँ भी पढ़ती हैं,

---

* खोजा बंबई और गुजरात प्रान्त में मुसलमानों की एक जाति है, यह लोग बड़े व्यापार-कुशल होते हैं।

यद्यपि खोजा लोगों की अपनी पाठशालायें भी हैं। यह कन्याएं बराबर आर्यभजन गाती हैं और प्रार्थना तथा संध्या के मन्त्र पढ़ती हैं। आर्यसमाजियों की लड़कियाँ तो कम पढ़ती हैं परन्तु दूसरी जातियों की लड़कियों की संख्या ८० के लगभग है। इस पाठशाला में कन्याओं को व्यायाम भी सिखाया जाता है।

वाचनालय—यहाँ समाज का एक वाचनालय भी है।

समाज की अन्य बातें—इस समाज में ३५ सभासद् हैं। यह समाज बम्बई आर्यप्रतिनिधि सभा से सम्बन्धित है। यहाँ से कई बालक गुरुकुल काँगड़ी में विद्याध्ययन के लिये गये हैं। इस समाज ने कई शुद्धियाँ भी की हैं।

कम्पाला आर्यसमाज (युगेन्डा)

कम्पाला नगर ब्रिटिश पूर्वीय अफ्रीका के युगेन्डा प्रांत में एक घना और व्यापारी नगर है। यह नगर विक्टोरिया झील से ६ मील की दूरी पर स्थित है।

इस प्रांत में थोक व्यापार अङ्गरेज़ों के हाथ में है और खेरीज का व्यापार भारतीयों के हाथ में है।

यहां की मुख्य उपज रुई है। रुई का व्यापार अधिकांश भारतीयों के हाथ में है।

आर्यसमाज की स्थापना—सन् १६०८ में श्री स्वामी पूर्णानन्दजी यहां पधारे। उनके प्रचार और वहां के कुछ आर्य-भाइयों के परिश्रम से इस नगर में आर्यसमाज की स्थापना हुई, परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कई वर्षों तक अन्य किसी उपदेशक के न पहुँचने के कारण श्री स्वामी पूर्णानन्दजी के उपदेश का प्रभाव विलीन हो गया।

सन् १९१२ में फिर कुछ सज्जनों के उद्योग से आर्यसमाज की स्थापना हुई और साप्ताहिक सत्संग नियमपूर्वक होने लगे।

श्री पं० महारानीशङ्करजी का प्रचार—सन् १९१३ में श्री पं० महारानीशंकरजी उपदेशक आर्यप्रतिनिधि सभा बम्बई यहाँ पधारे। उनके उपदेश का यह प्रभाव होता था कि आर्य्य, हिन्दू, खोजे, मुसलमान सभी इनके अमृत-रूपी उपदेशों से अपनी धर्म-पिपासा को तृप्त करने के लिये इनके व्याख्यानों में भाग लेते थे।

यूरोपियन महासमर का प्रभाव—सन् १९१४ में इस संग्राम के कारण आर्यसमाज का प्रचार-कार्य्य मन्द पड़ गया।

आर्यसमाज के कार्य का पुनः आरम्भ—युद्ध की समाप्ति पर सन् १९२० में कुछ सज्जनों ने अपने उद्योग से आर्यसमाज के कार्य को फिर आरम्भ किया।

भारतीय उपदेशक—सन् १९२१ में श्री ठा० प्रवीणसिंहजी, श्री पं० ईश्वरदत्तजी, श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज और श्री प्रो० रामदेवजी गुरुकुल कांगड़ी के लिये धन एकत्रित करने के हेतु आये।

सन् १९२८ में श्री डा० भगतरामजी सहगल आये, इनके अतिरिक्त श्री पं० बालकृष्णजी तथा श्री पं० मणिशंकरजी भी पधारे।

आर्यसमाज का मन्दिर—सन् १९२९ में आर्यसमाज का मन्दिर बड़ा आलीशान बन गया है। इसकी लागत ५१,५३२ शिलिंग है। समाजमन्दिर की तमाम भूमि श्री पं० सुन्दर-सिंहजी कालसी ने दान में देदी है।

समाज के निर्माणार्थ श्री नानजी कालीदास महता ने सबसे बड़ी धन-राशि दस सहस्र शिलिंग दान में दी है।

सभासदों की संख्या—समाज में लगभग ५० सभासद् हैं।

पुस्तकालय—समाज में एक छोटासा पुस्तकालय भी है। पुस्तकों की क़ीमत लगभग ४०० शिलिंग होगी।

आर्यसमाज दारेस-सलाम।

दारेस-सलाम ब्रिटिश पूर्वीय अफ्रीका में टाँगानियका प्रान्त की राजधानी और बन्दरगाह है। यह प्रांत यूरोपियन महा-समर से पूर्व जर्मनी के आधीन था, परन्तु उसके पश्चात् अंग्रेज़ों के आधीन होगया है।

आर्यसमाज की स्थापना—यहां आर्यसमाज वैसे तो कई वर्षों से स्थापित है, परन्तु सन् १९१९ से यह नियमपूर्वक चल रहा है।

समाजमंदिर—समाजमन्दिर दो मञ्जिला २३०० पौंड की लागत का बना हुआ है।

सभासदों की संख्या—सभासदों की संख्या ५०० के लगभग है।

गुरुकुल और कन्या-विद्यालय की तैयारियां—इन संस्थाओं के निर्माणार्थ सन् १९२९ में ६००० पौंड एकत्रित किये गये थे, आशा है कि यह संस्थाएं अब खुल गई होंगी।

भारतीय उपदेशक—श्री डा० भगतरामजी सहगल, श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज तथा श्री महता जैमिनीजी इत्यादि ने वहां जाकर खूब प्रचार किया है।

मौरीशस।

मौरीशस द्वीप भारत महासागर में अफ्रीका और मेडेगास्कर के पूर्व में स्थित है। यह अङ्गरेज़ों के आधीन है। इस द्वीप को हमारे ग्रामीण भाई "मिर्च टापू" भी कहते हैं।

भारतीयों की जनसंख्या—सन् १९३१ में २,१५,७१६ थी।

भारतीयों का आगमन—संसार में मौरीशस ही वह उपनिवेश है जहां सन् १८३४ में पहले पहल आर्यजाति कुली के रूप में बाहर गई। सात सहस्र भारतीय मज़दूर मौरीशस भेजे गये। अतः उसी वर्ष से भारतीयों के भाग्य में बदा था कि अपने को कुली कहला कर विश्वव्यापी अपकीर्ति का काला टीका अपने माथे पर लगवायें।

मौरीशस में आर्यसमाज के प्रचारयुग से पूर्व की दशा—अब से बीस वर्ष पूर्व मौरीशस में आर्य-धर्म का सच्चा स्वरूप पाखण्ड और आडम्बरों के आवरण में ढका हुआ था। ढोंगियों की दूकानें खूब चल रही थीं। यह लोग कान फूंक कर स्वर्ग जाने की सनद दे दिया करते थे। जो इनसे कान नहीं फुंकवाता वह "निगुरा' कहा जाता और उसके हाथ का पानी पीना भी बुरा माना जाता था। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि इन पोपपन्थियों के लिये इन नामधारी ब्राह्मणों के गन्दे पांव धोकर उस नर्क को गंगाजल की भांति गटागट पी जाना शिष्यों और यजमानों के लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी था। न यहां कोई मातृ-भाषा की पाठशाला थी और न आर्य (हिन्दू) धर्म की कोई सभा। फगुआ (होली) के अवसर पर मद्यपान कर मतवाला बनना और नारी-मण्डल को अशिष्ट और अश्लील भाषा तथा अपशब्दों से अलंकृत करना इस महोत्सव का मुख्य लक्षण था। इसी प्रकार भारत की समस्त बुरी रूढ़ियों को प्रवासी भाइयों ने मौरीशस में प्रचलित किया। फल यह हुआ कि शिक्षित नवयुवकों को पौराणिक मत का यह बीभत्स रूप देखकर उसके प्रति घृणा होने लगी। युवक-हृदय से क्रांति की

लहर उठने लगी। धड़ाधड़ यह लोग मुसलमान और ईसाई होने लगे। ऐसी विकट परिस्थिति में वेद भगवान् और महर्षि दयानन्द का सन्देश वहां पहुँचा।

आर्यसमाज के प्रचारयुग का आरम्भ और आर्यसमाज की स्थापना—सन् १८९६ में तीन वर्ष के लिये प्रथम नम्बर बङ्गाल पदाति सेना यहां आई हुई थी। जब यह सेना यहां से भारतवर्ष वापिस जाने लगी तो उसमें से कुछेक आर्यसमाजी सूबेदार द्वारा वितरण किये हुए सत्यार्थप्रकाश यहां के भारतीयों ने पढ़े। इस अपूर्व पुस्तक ने युवकों के निराशारूपी ताप से मुर्झाये हुये हृदयों को आशारूपी वारिध से सींचा और उनको विधर्मी होने से बचा लिया। वे वैदिक धर्म के झण्डे के नीचे एकत्र होकर उज्वल भविष्य की कल्पना करने लगे। इसी समय लाहोर से "आर्यपत्रिका" नामक अङ्गरेज़ी का पत्र वहां जाने लगा और इसका प्रभाव भी वहां की जनता पर पड़ा।

सबसे पूर्व आर्य्यसमाज की स्थापना के लिये सन् १९०३ में स्वर्गवासी श्री तोतालालजी उपनाम खेमलालजी, स्वर्गवासी श्री जगमोहनगोपालजी और श्री गुरुप्रसाद दलजीतलालजी ने घोर प्रयत्न किया। कुछ थोड़ी ही सी सफलता प्राप्त हुई थी कि वहां के पाखण्डी ब्राह्मणों ने मूर्ख जनता के ऊपर से अपना प्रभुत्व उठते देख आर्यसमाज का घोर विरोध किया, फलतः प्रशंसित सज्जनों को सफलता न हुई। परन्तु इन सज्जनों ने जो कुछ धन एकत्रित किया था उससे भारत से वैदिक-धर्म सम्बन्धी ट्रैक्ट मंगवाकर जनता में बांट दिये, जिससे शनैः शनैः आर्यसमाज की शिक्षा व्यक्तिगत रूप से अपना घर करने लगी।

मौरीशस में आर्यसमाज के संस्थापक डा० मणिलालजी बैरिस्टर—इसके पश्चात् डा० मणिलालजी एम. ए. एल-एल. बी. इंगलैण्ड से मौरीशस आये। उन्होंने यहां आकर यह अनुभव किया कि मौरिशस में अन्ध-विश्वास की प्रधानता है और नामधारी ब्राह्मण जनता को ठग रहे हैं और व्यसनी बना रहे हैं। इनको इसका एक यही उपाय सूझा कि किसी भाँति मोरीशस में आर्यसमाज का प्रचार किया जावे। यद्यपि वे स्वयं आर्य्यसमाजी न थे और न आर्यसमाज के संगठन से परिचित थे, परन्तु उनके हृदय और मस्तिष्क पर प्राचीन आर्य-सभ्यता और संस्कृति की छाप लग चुकी थी। उसे सुरक्षित रखने के लिये वे आर्यसमाज के कार्य्यक्रम, संगठन-शक्ति तथा प्रचार को मरणासन्न आर्य (हिन्दू) जाति के लिये संजीवनी बूटी समझ चुके थे।

प्रभु की असीम कृपा से अन्त में वह शुभ समय भी आया जब डाक्टर मणिलालजी ने अपनी मनो-कामना को कार्य्य-रूप में परिणत होते देखा अर्थात् ता० १७ अप्रेल सन् १९११ को केवल १७ सभासदों के साथ पोर्ट लुईस में आर्यसमाज की स्थापना हुई। डाक्टरजी भी इस स्थापना दिवस पर सभा में उपस्थित थे। सभा के निम्नलिखित कर्मचारी निर्वाचित हुये—

स्वर्गवासी श्री तोतालालजी प्रधान, श्री गुरुप्रसाद दल-जीतलालजी मन्त्री, श्री अवधेशप्रसादजी उपमन्त्री, स्वर्गवासी श्री केहरसिंहजी कोषाध्यक्ष, श्री गयासिंहजी पुस्तकाध्यक्ष।

इसी दिन वहाँ से वैदिक-धर्म के प्रचारार्थ "मौरिशस आर्य्य-पत्रिका" नामक एक मासिक पत्र शीघ्र निकालना निश्चित हुआ। ता० १ जून सन् १९११ को इसका प्रथमाङ्क प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशन में भी डा० मणिलालजी ने अपने प्रेस



स्वर्गीय श्री डा० चिरंजीव भारद्वाजजी

द्वारा बहुत सहायता दी, परन्तु आपके हृदय में योग्य उपदेशकों का अभाव खटक रहा था इसलिये वह किसी अवसर की प्रतीक्षा में थे।

इनको कार्य्यवश रंगून जाना पड़ा। (रंगून के प्रसिद्ध भारतीय महताजी की कन्या के साथ इनका विवाह हुआ था)। उस समय वह वहाँ स्वर्गीय डाक्टर चिरंजीव भारद्वाजजी से, जो कि उस समय रंगून ही में थे, मिले और उन्हें प्रेरित किया कि यदि मोरिशस में आर्य्यसमाज का कार्य्य करें तो अत्यन्त लाभ हो। डा० भारद्वाजजी ने इसे स्वीकार कर लिया। डा० मणिलालजी ने मोरीशस लौटकर वहाँ के सज्जनों से डा० भारद्वाजजी के लिये निमन्त्रण भिजवा दिया।

डा० चिरंजीव भारद्वाजजी * तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुमङ्गलीदेवीजी का शुभागमन और उनका प्रचार—निमन्त्रण-पत्र प्राप्त कर डा० चिरंजीव भारद्वाजजी मौरीशस पहुंच गये। प्रथम तो आपकी प्रेक्टिस अत्युत्तम रीति से चमकी। उसी समय आपने आर्यसमाज का कार्य करना आरम्भ कर दिया। तब पौराणिक हिन्दू इनके पास आये और प्रार्थना की कि आप आर्य्यसमाजी रहें परन्तु आर्य्यसमाज का कार्य्य न करें। डाक्टरजी ने इस पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इस पर इनका बहिष्कार किया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि डाक्टरजी की आय जहाँ न्यून से न्यून १५००) मासिक होती थी अब केवल १००) मासिक रह गई, परन्तु इस वीर ने अब और भी अधिक समय प्रचार में लगाया। श्री डाक्टरजी दिन में प्रचार करते और रात्रि में बालकों को घर पर पाठशाला में पढ़ाते।

---

* स्वर्गवासी श्री डाक्टर चिरंजीव भारद्वाजजी लाहौर के रहने वाले थे, आपने ही सत्यार्थप्रकाश का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया था।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सुमंगलीदेवीजी स्त्रियों में प्रचार करती थीं और गृह पर कन्या-पाठशाला भी लगाती थीं।

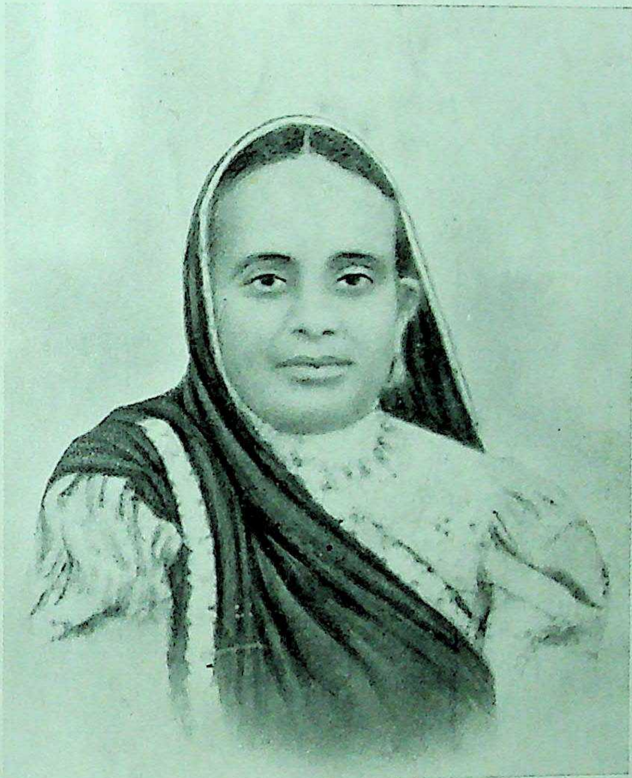
विदेशों में दाम्पत्य जीवन बिताने वाले प्रचारकों के लिये उपरोक्त युगल जीवन अनुकरणीय है।

मौरीशस में प्रशंसित डाक्टरजी ही सब से प्रथम सज्जन थे, जिन्होंने भारत से आकर वैदिक-धर्म का प्रचार कर आर्य-समाज की नींव सुदृढ़ की।

पं० जगन्नाथजी का प्रचार—इसी समय इस समाज के आधीन श्री पं० जगन्नाथजी वैतनिक उपदेशक ने भी प्रचार-कार्य किया।

आर्यप्रतिनिधि की स्थापना, उसकी रजिस्टरी की अस्वीकृति तथा आर्य परोपकारिणी सभा की रजिस्टरी—सन् १९१२ में आर्य-प्रतिनिधि सभा स्थापित हुई और उसे रजिस्टर्ड कराने के लिये सरकार से प्रार्थना की गई, परन्तु सरकार ने स्वीकृति नहीं दी, तब डाक्टर भारद्वाजजी ने "आर्य-परोपकारिणीसभा" के नाम से दूसरी सभा खोल कर उसे रजिस्टर्ड कराने के लिये सरकार से प्रार्थना की जिसे सरकार ने १७ नवम्बर सन् १९१३ को रजिस्टर्ड कर दिया। इसका कार्यालय पोर्टलुईस में है।

आर्य परोपकारिणी सभा मौरीशस के आधीन कुछ समाजों के नाम:—१ पोर्टलुईस, २ पेचितरिव्येर, ३ बोबासे ४ बेलरोज़, ५ स्टेएडेल, ६ वाक्वा, ७ मेबर्ग, ८ रिव्येर देज़ांगी, ९ तय्याक, १० बेनाकेई, ११ बेनमेर, १२ लेसेपरास, १३ त्रिओले, १४ सेप्येर, १५ फोंजि, १६ कयुर्दिप। इनके अतिरिक्त अन्य कई समाजें भी इस सभा के आधीन हैं।



श्रीमती सुमंगलीदेवीजी धर्मपत्नी स्वर्गीय श्री डा० चिरंजीव भारद्वाजजी

आर्य परोपकारिणी सभा के आधीन संस्थाएं—

१-आर्य वैदिक विद्यालय वाक्वा में है। इस विद्यालय को सरकारी सहायता प्राप्त है। लगभग ५०० लड़के तथा लड़कियां † इसमें विद्याध्ययन करती हैं। २-दयानन्द धर्मशाला, ३-वैदिक प्रेस।

आर्य्य परोपकारिणी सभा का पत्र—'आर्य-पत्रिका' इसका मुखपत्र है। इसके सम्पादक श्री म० मन्सासिंहजी थे।

आर्यप्रतिनिधि सभा मोरिशस की पुनः स्थापना और रजिस्टरी—२७ नवम्बर सन् १९२६ को आर्यप्रतिनिधि सभा को पुनर्जीवित किया गया और उसे रजिस्टर्ड कराने की कोशिश की गई। अन्त में ता० २७ फरवरी सन् १९२८ को सरकारी घोषणा द्वारा आर्यप्रतिनिधि सभा की रजिस्टरी होगई जिसके द्वारा इस सभा को जिस स्थान पर कम से कम १० सभासद् हों वहाँ आर्यसमाज नाम से शाखा खोलने का अधिकार प्राप्त है। प्रतिनिधि सभा का कार्यालय पोर्टलुईस में है।

आर्यप्रतिनिधि सभा के आधीन समाजों की संख्या—

आर्य्यसमाजों के नाम तथा उनकी सदस्यसंख्या—

संख्या समाज	नाम आर्यसमाज	संख्या सदस्य
(१)	पोर्टलुईस	११
(२)	बेलरोज़	२६
(३)	ओमेनी	२४

† इस विद्यालय में भी लड़के लड़कियों की सम्मिलित शिक्षा होती है यह प्रथा अवैदिक है, इसे शीघ्र ही त्याग देना चाहिये।

संख्या समाज	नाम आर्यसमाज	संख्या सदस्य
(४)	लावेनीर	१०
(५)	लालमाटी	१०
(६)	बेलवां	१०
(७)	बुआर्शरी	१२
(८)	लारेन्यो	१०
(९)	रिपाई	१२
(१०)	पीतीवर्ग	१७
(११)	ओर्नश	३२
(१२)	पोलार्ज़े	११
(१३)	तौरेल	१०
(१४)	स्तेन्दले	११

इनके अतिरिक्त आर्यसमाज कपूर पिपरोड, आबेनी, ओलिये, रिवर दिरांपर, सेन्ट्रल फ्लाक, बोनाकेई, मोताई जाको, रिवरे दिपास्ट, सेमेग्रेनिये तथा कैंजकातोरोड का भी सम्बन्ध आर्यप्रतिनिधि सभा के साथ है, परन्तु यह समाजें शिथिलावस्था में पड़ी हुई हैं।

आर्यप्रतिनिधि सभा का सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा देहली के साथ सम्बन्ध–इस सभा का सम्बन्ध सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा देहली के साथ ता० २० जनवरी सन् १९३२ को होगया है।

आर्यप्रतिनिधि सभा का प्रेस और मुख-पत्र–इस सभा का श्रद्धानन्द प्रेस है जिससे "आर्यवीर" नामक साप्ताहिक पत्र हिन्दी, अंग्रेज़ी और फ्रेञ्च भाषा में निकलता है। इस पत्र के द्वारा मौरिशस की जनता में आर्यसमाज का अच्छा प्रचार होरहा है।



आर्य-प्रतिनिधि सभा मौरीशस के अंतरंग सदस्य तथा उपदेशक

इसके सम्पादक श्री पं० काशीनाथजी हैं। इनका कार्य बड़ा सराहनीय है।

आर्यप्रतिनिधि सभा के आधीन समाजों की संस्थाएं—

(१) आर्यसमाज ओमेनी के आधीन एक कन्या-पाठशाला और एक रात्रि पुत्र-पाठशाला है।

(२) आर्यप्रतिनिधि सभा के आधीन "सरस्वती ऐरियन ऐडेड स्कूल" ज़िला फ्लाक एक्रोयार ग्राम में है। विद्यार्थियों की संख्या १३०-१५० तक है। इस विद्यालय को सरकारी सहायता प्राप्त है।

(३) आर्यसमाज सेन्ट्रल फ्लाक के आधीन एक कन्या-पाठशाला है।

(४) आर्यसमाज बेलरोज़, आनेश, वेल्लेतां, पीती वेर्गे के आधीन रात्रि-पाठशालाएं हैं।

मौरीशस में आर्यसमाजियों की संख्या और उनकी भाषाएं—

तमाम मौरीशस में आर्यसमाजी कहलाने वालों की संख्या लगभग २००० होगी। इनमें अधिकांश हिन्दी-भाषा भाषी हैं। कुछ गुजराती, तामिल, तेलगू और मराठी बोलने वाले भी हैं, परन्तु फ्रेन्च भाषा का अपभ्रंश क्रिओली (पातवा) सभी बोलते और समझते हैं।

आर्यप्रतिनिधि सभा के आधीन कुछ समाजमन्दिर और उनकी लागत—

संख्या	नाम समाजमन्दिर	लागत
(१)	श्रद्धानन्दाश्रम	३०००)
(२)	आर्यसमाज बेलरोज़	१०००)

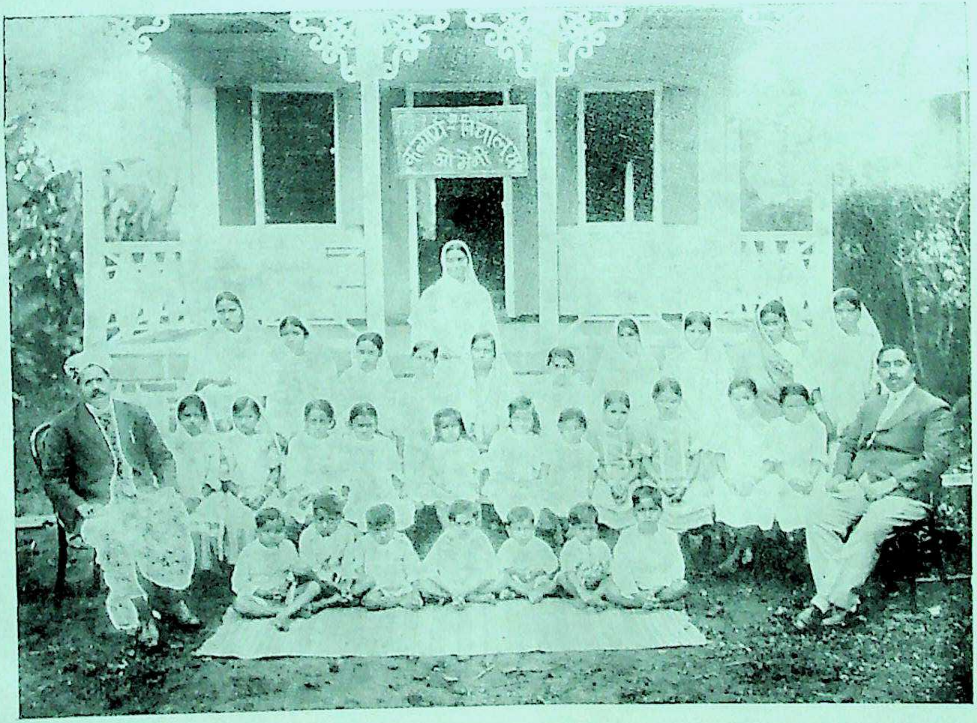
संख्या	नाम समाजमन्दिर	लागत
(३)	आर्यसमाज ओमेनी	२,५००)
(४)	,, लालमाटी	२००)
(५)	,, स्तेन्दले	२००)
(६)	,, लाबेनोर	३००)

भारत से गये हुये आर्योपदेशक और उनके प्रचार का ढंग—सन् १९१२ में स्वामी * मङ्गलानन्दपुरी इण्डियन पेनिनशुला स्टीम नेवीगेशन कम्पनी (Indian Peninsula Steam Navigation Company) के हिस्से (Shares) बेचने के लिये अपने साथ श्री लक्ष्मणदत्त पांडे को लेकर गये। आपने आरंभ में वैदिक-धर्म का कुछ प्रचार किया, परन्तु एक दो मास के उपरान्त पांडेजी का आर्यसमाज में छोड़ आप स्वयं पौराणिक केम्प में जा घुसे और वैदिक-धर्म के विरुद्ध शास्त्रार्थ करने के लिये आर्य्यसमाज को चेलेञ्ज देदिया जिसको आर्यसमाज ने सहर्ष स्वीकार किया, परन्तु स्वामी मंगलानन्दपुरी चेलेंज ही देकर रह गये और सामने भी न आये और बुलाने पर भी इन्कार कर दिया, परन्तु आर्य-समाज के विरुद्ध उस समय के "ओरिन्टियल" नामक पत्र में लेख प्रकाशित करते रहे।

श्री लक्ष्मणदत्तजी पांडे कुछ समय तक पोर्टलुईस आर्यसमाज के आधीन वैतनिक उपदेशक रहकर यहाँ से चले गये।

---

* स्वामी मंगलानन्दपुरी ठीक २० वर्ष के पश्चात् फिर अपने उसी असली रूप में आगये हैं जिस रूप का उन्होंने सन् १९१२ में मौरिशस में प्रकाश किया था। अपनी करतूतों के कारण अब वह आर्यसमाज से बिल्कुल पृथक् कर दिये गये हैं। कोई सज्जन उन्हें आर्योपदेशक न समझे और अब उनसे सचेत रहे।



आर्य-कन्या-विद्यालय ओमेनी, मौरीशस की छात्रायें

श्री डा० चिरंजीव भारद्वाजजी तथा श्री डा० मणिलालजी बैरिस्टर–इसी वर्ष स्व० श्री डा० चिरंजीव भारद्वाजजी रंगून से यहाँ आये और स्वतन्त्ररूप से आर्यसमाज के हित के लिये आपने निःस्वार्थ और अमूल्य सेवा की जिसका बहुत कुछ विवरण पूर्व आचुका है। मौरिशस के आर्यसमाज के इतिहास में स्व० श्री डा० चिरंजीव भारद्वाजजी तथा डा० मणिलालजी बैरिस्टर के नाम अमर रहेंगे। आप दोनों के नाम वहाँ के आर्य लोग बड़ी श्रद्धा के साथ लेते हैं।

श्री स्वामी विज्ञानानन्दजी–सन् १९२६ में आप यहाँ आये और ६ वर्ष तक आर्य्य परोपकारिणी के आधीन रहकर कार्य किया।

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज का प्रचार–डाक्टर भारद्वाजजी एक बार बीच में भारत आये थे। उस समय उन्होंने श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज से प्रचारार्थ मौरिशस चलने की प्रार्थना की थी, परन्तु उस समय स्वामीजी कुछ कारणवश नहीं जासके। अतः डा० भारद्वाजजी ने मौरिशस पहुँच कर पुनः प्रेरणा की तब श्री स्वामीजी वहाँ गये। आपने वहाँ २॥ वर्ष तक आर्य्य परोपकारिणी सभा तथा आर्य्य-प्रतिनिधि सभा के आधान रहकर प्रचार किया।

स्वामीजी के समय की दो बातें यहाँ विशेष उल्लेखनीय हैं:—(१) मौरिशस में प्रथम यह नियम था कि उस समय तक विवाह ही नहीं समझा जाता था जब तक उसकी न्यायालय में रजिस्टरी न हो जाती। जब डा० मणिलालजी के समय में रायल कमीशन आया उसकी व्यवस्थानुकूल यह नियम हो गया कि रजिस्टरी के रजिस्टर पंडित, मौलवी और पादरियों को दे दिये

जायें वे भर कर भेजदें तो विवाह रजिस्टर्ड समझे जावें। जब यह रजिस्टर मिले तो दो ब्राह्मण भी आर्यसमाज के साथ काम करते थे। उनसे आर्यसमाजी विवाह रजिस्टर्ड करा लेते थे, किन्तु डा० भारद्वाजजी के समय में वे दोनों ब्राह्मण आर्यसमाज से बिगड़ गये इसलिये आर्यसमाज ने सरकार से अपने मनुष्यों के लिये रजिस्टर माँगे। सरकार ने कहा कि जो जन्म का ब्राह्मण है उसे ही रजिस्टर दिये जा सकते हैं, अन्य को नहीं। इसी आधार पर आन्दोलन आरम्भ हुआ। अन्त में सरकार ने आर्यसमाज के उन व्यक्तियों को, जो ब्राह्मण नहीं थे, रजिस्टर देदिये, इससे आर्य्यसमाज का प्रभाव बढ़ गया।

दूसरा कार्य था आर्य-भाषा का प्रचार

दुर्भाग्यवश वहां आप अपने दोनों नेत्र खो बैठे, यह दुःख आपको अकस्मात् विना किसी कष्ट के हुआ था अतः इसी दुःख के कारण आप भारत लौट आये। आपके प्रचार से वहाँ की जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

श्री महता जैमिनीजी का प्रचार–सन् १६२५ में आप यहाँ आये थे और १० मास तक आपने आर्य्य परोपकारिणी सभा के आधीन रहकर प्रचार-कार्य्य किया। आपके व्याख्यानों से जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

श्री पं० नारायणदत्तजी सिद्धान्तभूषण–आप उपदेशक विद्यालय लाहौर के पढ़े हुये हैं। आप आज कल मोरिशस में प्रचार-कार्य कर रहे हैं।

श्री पं० यदुनन्दन शर्मा तथा पं लक्ष्मणजी–आप दोनों सज्जन मौरिशस ही के रहने वाले हैं। आप ब्राह्ममहाविद्यालय



श्री महता जैमिनीजी

लाहौर और डी. ए. वी. कालेज लाहौर से पढ़कर गये हुये हैं। आप अपनी सुविधानुसार प्रचार करते रहते हैं।

पं० रामअवध शर्मा और पं० अवधेशप्रसाद का पौराणिक मत में प्रवेश—सन् १९११ में पं० रामअवध शर्मा और पं० अवधेशप्रसादजी यहां से डी. ए. वी., कालेज लाहौर विद्याध्ययन के लिये गये थे। वहाँ केवल तीन या चार मास ही पढ़कर ये मौरिशस वापिस लौट आये। पं० रामअवध शर्मा ने लौट आने पर कुछ दिन आर्यसमाज में वैतनिक उपदेशक रहकर कार्य किया। फिर पौराणिक केम्प में जाघुसे और पौराणिक परिडत बन गये।

पं० अवधेशप्रसाद भारत से लौटते ही पौराणिक केम्प में चले गये।

स्त्रियों में प्रचार—मौरिशस में स्त्री-आर्यसमाज का कार्य अभी नाममात्र को है। आर्य-प्रतिनिधि सभा की ओर से केवल श्रीमती भाग्यवतीदेवीजी और आर्य परोपकारिणी सभा की ओर से श्रीमती पार्वतीदेवीजी स्त्रियों में प्रचार करती रहती हैं।

क्रिश्चियन, मुसलमान तथा पौराणिक भाइयों का आर्यसमाज के प्रति व्यवहार—आरम्भ में इन लोगों का जो आर्यसमाज के साथ द्वेष था वह अब नहीं है। अब सब ने प्रेम-पूर्वक वर्तना आरम्भ कर दिया है।

भाषाएँ जिनमें वैदिक-ग्रन्थ होने से भलीभाँति प्रचार किया जा सकता है—हिन्दी, उर्दू, तामिल, मराठी, तेलगू, अंग्रेज़ी, फ्रेञ्च भाषाओं में वैदिक-ग्रन्थ होने से मौरिशस में भलीभाँति प्रचार-कार्य हो सकता है।

उपदेशक की आवश्यकता—मौरिशस आर्यप्रतिनिधि सभा को एक योग्य उपदेशक की आवश्यकता है। उपदेशक की आयु ४० वर्ष से न्यून न हो तो अधिक अच्छा है। उसका व्यय-भार उक्त सभा १००) मासिक तक उठा सकती है। विशेष कर कोई विद्वान् आर्य-संन्यासी हो तो और भी उत्तम है।

फीज़ी

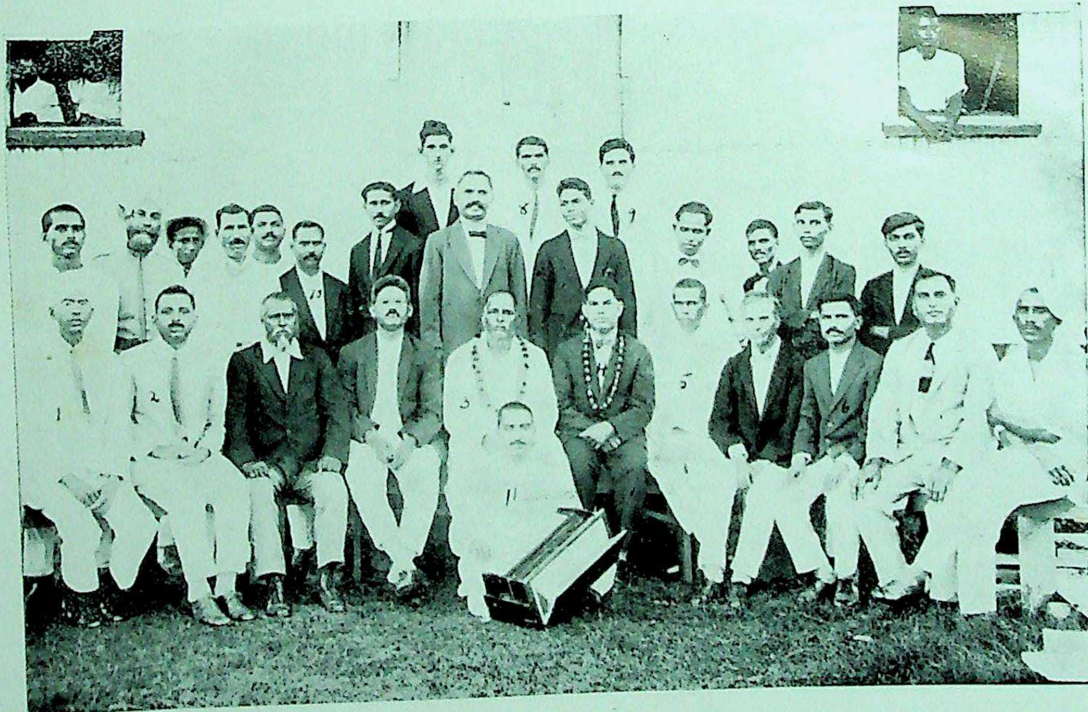
फीज़ी द्वीप पेसेफिक (प्रशान्त) महासागर में आस्ट्रेलिया के पूर्व और न्यूजीलेण्ड के उत्तर में स्थित है।

फीज़ी द्वीप-समूह लगभग २५० भागों में विभक्त है। उसका क्षेत्रफल ७०८३ वर्गमील है। लगभग ८० द्वीपों में मनुष्यों की आबादी है। फीज़ी द्वीप समूह ब्रिटिश सरकार के आधीन है।

	जनसंख्या	वर्ष
भारतीयों की संख्या—	७६,७२२—	१९३२

भारतीयों का आगमन—पहिले पहिल सन् १८७९ की पहिली मई को 'लियोडिनास' नामक जहाज़ भारतीय शर्तबन्दी मज़दूरों को लेकर फीज़ी द्वीप पहुँचा था।

आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व की दशा—ईसाइयों ने आर्य-जाति को ईसाई बनाने के लिये कुछ उठा न रक्खा था। भारत से कई ईसाई प्रचारक भी बुला लिये गये थे। यदि महर्षि दयानन्द की फैलाई हुई वैदिक ज्योति फीज़ी में न पहुँचती तो आज फिजी का कुछ और ही रूप होता। आज वहां राम और कृष्ण का नाम लेने वाला कोई न मिलता।



फीज़ी में आर्यसमाज के कुछेक कार्यकर्ता

आर्यसमाज की स्थापना—सब से पहिले सन् १९०४ में सामाबूला नामक स्थान में आर्यसमाज की स्थापना हुई। तबसे उसके द्वारा वहां बराबर वैदिक-धर्म का प्रचार हो रहा है।

आर्यसमाज पर सरकार का प्रहार—सन् १९१३ में सरकार ने आर्य्यसमाज को अपने विरुद्ध क्रान्तिकारी संस्था होने का सन्देह किया। पुलिस समाज के समस्त काग़ज़ पत्र उठा ले गई पर उस सरकार के विरुद्ध उत्तेजित करने वाला कोई पत्र न मिला। निराश होकर पुलिस सब काग़ज़ात लौटा गई। आर्यसमाज की ओर से भ्रमनिवारणार्थ गवर्नर के पास वैदिक धर्म के सम्बन्ध में अंग्रेज़ी की पुस्तकें भेजी गईं। फलतः इसके पश्चात् सरकार का सन्देह मिट गया।

त्यौहार—आर्यजाति अपने त्यौहारों को भूल चुकी थी। सब से प्रथम सन् १९१२ में आर्यसमाज की ओर से त्यौहार मनाये जाने लगे। आर्यसमाज ने क्रियात्मक रूप से बतलाया कि पुरानी दूषित प्रचलित प्रथाओं को छोड़ कर किस प्रकार वैदिक पद्धति से पर्व मनाये जायें।

आर्यसम्मेलन—सन् १९१९ में सूबा में आर्यों का प्रथम सम्मेलन हुआ। उसमें एक पाठशाला खोलने का विचार किया गया। इसके लिये लगभग ३०० पौण्ड धन भी एकत्र हुआ।

उसी वर्ष द्रासा में भी आर्यसम्मेलन हुआ, जिसमें पाठशाला के लिये ११०० पौण्ड धन एकत्र हुआ।

आर्यप्रतिनिधि सभा की स्थापना—समस्त आर्यसमाजों के कार्य को केन्द्रित करने के लिये सन् १९१९ में द्रासा में आर्यप्रतिनिधि सभा की स्थापना की गई।

आज कल इस प्रतिनिधि सभा का कार्यालय लोटोका में है।

आर्यप्रतिनिधि सभा के आधीन समाजें और उनमें आर्यसभासद्—आर्यप्रतिनिधि सभा एक रजिस्टर्ड संस्था है। इसके आधीन १० समाजे हैं जिनमें रा, तावुआ, वा, नान्दी लोटोका, नावुआ, लम्बासा, नन्दरोगा, नौसोरी तथा सूवा। जिन में ३०० से अधिक आर्य-सभासद् हैं।

आर्यप्रतिनिधि सभा का सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा देहली के साथ सम्बन्ध—यह सभा सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा देहली के साथ २८—३—२८ को सम्बन्धित हो चुकी है।

आर्यप्रतिनिधि सभा की सम्पत्ति—सभा के पास इस समय लगभग ६५,०००) की इमारत है। इसके अतिरिक्त १५,०००) की ज़मीनें हैं। इस प्रकार सब मिलाकर ८०,०००) सहस्र की स्थिर सम्पति है। सभा का वार्षिक व्यय लगभग २०,०००) होता है।

आर्यप्रतिनिधि सभा के आधीन संस्थाएं

गुरुकुल नसोवा की स्थापना—५,६ तथा ७ नवम्बर सन् १९२९ को एक बड़ा भारी उत्सव मनाया गया और नसोवा में आरम्भ में १६०० पौण्ड धन से गुरुकुल की स्थापना हुई। गुरुकुल निरन्तर सुचारुरूप से चल रहा है। पं० गोपेन्द्रनारायणजी, जो भारत के गुरुकुल वृन्दावन में अध्यापक थे, गुरुकुल नसोवा में आचार्य हैं। आप बड़ी योग्यता से इस गुरुकुल का संचालन कर रहे हैं। गुरुकुल का वार्षिक व्यय १०,०००) के लगभग होता है।

सामाबूला आर्य-कन्या-महाविद्यालय—इसमें १०० से अधिक कन्याएं विद्या प्राप्त करती हैं। इसका वार्षिक व्यय लगभग ५,०००) है।

पं० अमीचन्द्रजी विद्यालङ्कार इसमें मुख्य अधिष्ठाता हैं। इस आर्य-कन्या-महा-विद्यालय की प्रशंसा फीज़ी के गवर्नर सर फ्लैचर ने कन्याओं के पारितोषिक वितरण के समय निम्नलिखित शब्दों में की थी जो २१ दिसम्बर सन् १९३१ के फीज़ी टाइम्स में प्रकाशित हुई थीं।

"May I, on behalf of the Government thank the Arya Samaj for the service it is rendering in the interest of education, both here and on the other side of the island. Owing to the opening of this School and the Government School at Vatuwaqa last year, the number of Indian girls attending schools in and around Suva has doubled in the past 12 months or so. I wish also to take this opportunity of thanking you for the help given to refugees in this building at the time of disastrous Rewa floods last February.

The religious instruction which you are giving is of importance. Religion is the foundation upon which you are building, and the religions and cultures which you have brought with you from India are not to be lightly regarded..........."

अर्थात् "मैं सरकार की ओर से आर्यसमाज को उसकी उन सेवाओं के लिये, जो वह शिक्षा की दिशा में यहाँ तथा द्वीप

के दूसरे भागों में कर रहा है, धन्यवाद देता हूं। इस पाठशाला तथा गत वर्ष वाद्वुवाका में सरकारी पाठशाला खुलजाने के कारण उन भारतीय कन्याओं की संख्या, जो सूवा तथा आसपास की पाठशालाओं में पढ़ती हैं, गत १२ मास में ही दुगनी हो गई है।

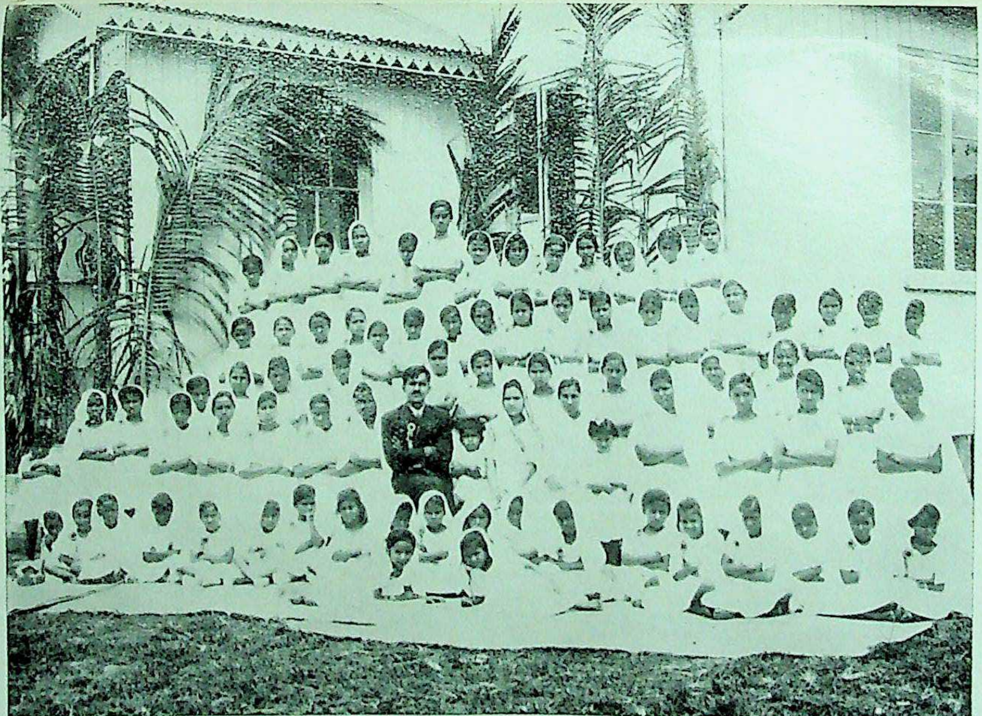
इस अवसर पर मैं आपको आपकी उस सहायता के लिये, जो आपने फरवरी के गत मास में उस प्रलयकारी बाढ़ के समय उन आश्रमियों को इस मकान में आश्रय देकर प्रदान की है, धन्यवाद देना चाहता हूं।

जो धार्मिक शिक्षा आप दे रहे हैं बड़ी महत्व की है। धर्म आधार शिला है जिस पर आप अपना जीवन-रूपी भव्य भवन निर्माण कर रहे हैं। जिन धार्मिक सिद्धान्तों और संस्कृति को आप अपने साथ भारतवर्ष से लाये हैं वह किसी दशा में भी कम ध्यान देने योग्य नहीं है।"

आर्य कन्यापाठशाला विर्शशी—सन् १९२८ से इस पाठशाला का कार्य नियमपूर्वक चलने लगा है। डाइरेक्टर शिक्षा विभाग ने इसे आदर्श विद्यालय बताया है। श्री शिवनन्दनजी तिवारी ने अपना निर्वास-गृह आर्यप्रतिनिधि सभा को इस पाठशाला के लिये दान दे दिया है। आप और आपकी धर्मपत्नी इस पाठशाला के लिये सराहनीय कार्य करती रहती हैं।

अनाथालय—यहाँ एक अनाथालय भी खुल गया है। इसके खुलवाने में श्री पं० कृष्णजी का उद्योग सराहनीय है।

आर्यभवन सूवा—सन् १९२९ में सामाबूला में आर्यसमाज सूवा ने एक विशाल आर्यभवन बनवाया है। यह फीज़ी में प्रथम अपनी शान का अनूठा भव्य-भवन है। इस भवन के बनवाने में श्री कन्हईसिंहजी ने अथक परिश्रम किया है।



आर्य-कन्या-पाठशाला सूवा, फीज़ी की छात्राएं

आर्यभवन तुराकी—गत वर्ष यहां १०,०००) के दान की एक नई भूमि मय मकान के लेली गई है। इसके लिये भी श्री कन्हईसिंहजी विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं। इसमें रात्रि-पाठशाला का कार्य भी होता है।

आर्यभवन, नौसोरी—यहाँ भी एक विशाल भवन बन गया है इस पर १३,०००) व्यय हुआ है। यह फीज़ी भर में सब से बड़ा भवन है। इस भवन को आर्य शिल्पकारों ने बिना किसी मज़दूरी लिये अपने खाली समय में बनाया है जिससे बनवाई के व्यय में भारी बचत हुई है, इस त्याग व सेवा के लिये वे आर्य-शिल्पकार धन्यवाद के पात्र हैं।

सूवा समाज—सूवा समाज का सामाबूला में मन्दिर है। उस में आर्य-युवकों का पुस्तकालय और आर्यकन्या-पाठशाला है।

नान्दी आर्यसमाज—कुछ वर्ष हुये भूमि ख़रीद ली गई थी। आशा है आर्यसमाज मन्दिर बन गया होगा।

आर्य पुत्र तथा पुत्री पाठशालाएं रगरग—रगरग में पुत्र और पुत्रियों के लिये पृथक् २ पाठाशालायें हैं, श्री राघवानन्दजी बड़ी योग्यता से इन पाठशालाओं का संचालन कर रहे हैं।

स्त्री आर्यसमाज सूबा—सूवा में श्रीमती सर्वतीदेवीजी (धर्मपत्नी पं० अमीचन्द्रजी) के आने पर स्त्रीसमाज की स्थापना हुई। आप इसमें हवन तथा सत्यार्थप्रकाश का पाठ किया करती हैं।

बाढ़ में सहायता—सन् १६३१ के फरवरी मास में नौसोरी में भयङ्कर बाढ़ आई। आर्यसमाज की ओर से बाढ़पीड़ितों को आर्यमन्दिर सामाबूला में ठहरने, खाने, पीने तथा वस्त्रादि का

प्रबन्ध किया गया। आर्यसमाज को इसमें लगभग ४,०००) व्यय करना पड़ा था। जैसा कि हम पूर्व कह आये हैं इसकी प्रशंसा यहाँ के गवर्नर महोदय ने भी की थी।

शुद्धि का कार्य—श्री पं० कृष्णजी के द्वारा अनेक शुद्धियाँ हुईं, जिसमें एक शिक्षित ईसाई परिवार की शुद्धि बड़े महत्व की घटना थी। मि० जैकब, मैथेडिस्ट मिश्नरी का नाम पं० विवेकप्रकाश रक्खा गया। इन्होंने अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्त कराने के लिये भारतवर्ष भेज दिया।

मूलनिवासियों की शुद्धि—श्री के० बी० सिंह आर्यसमाज के एक उत्साही कार्यकर्ता हैं। आप यहाँ सिंगापुर से आये हुए हैं। आपने तोरव तथा बिरिया की ओर काईवीतियों (वहाँ के मूल निवासियों) में वैदिक धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया है। कितने ही काईवीतियों की शुद्धि हो चुकी है। उनकी भाषा में प्रार्थना तथा समाज के नियम छपाने का यत्न किया जा रहा है।

वैदिक संदेश—श्री पं० कृष्णजी तथा श्री पं० विष्णुदेवजी ने "वैदिक संदेश" नामक पत्र निकाला जिसका उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करना तथा विधर्मियों को मुंह तोड़ उत्तर देना था।

फीज़ी में आर्यसमाज की रजतजयन्ती—फीज़ी में आर्यसमाज को स्थापित हुए २५ वर्ष हो चुके थे। इसके उपलक्ष्य में ३०, ३१ दिसम्बर १९२८ को सामाबूला में आर्यसमाज की रजतजयन्ती बड़ी धूमधाम और सफलता के साथ मनाई गई। इसके सभापति श्री ठा० कुन्दनसिंहजी कुश थे। श्री पं० हरदयालजी, श्री पं० राघवानन्दजी तथा श्रीमती जे० पी० महाराज

ने भिन्न-भिन्न सम्मेलनों में सभापति के आसन को सुशोभित किया था। इस अवसर पर नगर में एक विशाल जलूस भी निकाला गया था।

भारत से गये हुये आर्य उपदेशक

स्वामी राममनोहरानन्द का प्रचार तथा बाद को उनमें * विचित्र परिवर्तन (संन्यासाश्रम से गृहस्थाश्रम में)—सन् १९१३ में श्री स्वामी मनोहरानन्दजी आर्य-जनता की प्रार्थना स्वीकार कर यहाँ पधारे। आपने सामावूला में एक वर्ष तक प्रचार किया। इसके पश्चात् आपने लौटोका में प्रचार किया। स्वामीजी अपनी योग्यता और प्रचार-कार्य की लगन से वहाँ की आर्य-जनता में अपना प्रभाव खूब बिठा चुके थे और मनुष्यों की इनमें अटल श्रद्धा हो चुकी थी, परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि स्वामी मनोहरानन्दजी अपने किन्हीं दूषित संस्कारों के कारण मनोविकारों के वशीभूत होकर आध्यात्मिकता के उस सर्वोच्च स्थान से, जहाँ मनुष्य सर्वदा प्रत्येक श्वास परमानन्द की वायु में ही लेता है, ऐसे गढ़े में नीचे गिरे कि उनके जीवन का सौंदर्य सदैव के लिये चकनाचूर होगया। अर्थात् स्वामीजी ने म० रामग़रीब-सिंह की कन्या से विवाह कर लिया और उनको गुरुकुल तथा आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र से हमेशा के लिये विदा लेनी पड़ी। जितने भी लोग उनके पहिले श्रद्धालु थे वे सब अश्रद्धालु हो गये।

---

* मनुष्य का समस्त जिवन बड़ी महान् और कठिन परीक्षाओं की श्रृङ्खला है। मनुष्य को अपने प्रत्येक भाव, वचन तथा कर्म में यह अनुभव करना चाहिये कि कहीं वह कुमार्ग की ओर तो नहीं जारहा है। संन्यासी तथा उपदेशक वर्ग को तो मुख्यतः इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिये, क्योंकि वे तो मार्गप्रदर्शक होते हैं।

श्री पं० गोपेन्द्रनारायणजी पथिक का शुभागमन और कार्य—आप फीज़ी जाने से पूर्व गुरुकुल वृन्दावन में अध्यापक थे। सन् १६२५ में वहाँ के आर्य्य-भाइयों की प्रार्थना स्वामी भवानीदयालजी संन्यासी तथा श्री पं० शिवनारायणजी भूत-पूर्व मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दावन की प्रेरणा और श्री पं० तोतारामजी सनाढ्य के प्रोत्साहन से श्री पं० गोपेन्द्रनारायणजी वहाँ पधारे। आपके शांत, मृदुल और गम्भीर स्वभाव के कारण आर्यसमाज में नूतन शक्ति का संचार होगया। आपने गुरुकुल नौसोवा के कार्य को सम्हाला और उसमें बड़ी उन्नति की।

श्री पं० कृष्णजी का शुभागमन और प्रचार—एक उपदेशक की आवश्यकता अनुभव कर सभा ने भारतवर्ष से इनको बुलाया।

श्री पं० अमीचन्द्रजी तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सर्वतीदेवीजी का शुभागमन तथा उनका कार्य—आपको सभा ने बुलाया था। श्री पं० गोपेन्द्रनारायणजी को छुट्टी के समय प्रथम आपने गुरुकुल नौसोवा में कार्य किया। तत्पश्चात् सामाबूला कन्या-पाठशाला में कार्य्य करने लगीं।

श्रीमती सर्वतीदेवीजी भी इसी कन्या-पाठशाला में कार्य्य करती हैं। आप स्त्रियों में भी प्रचार करती रहती हैं।

श्री ठा० सरदारसिंहजी तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती दयावतीदेवीजी तथा उनका कार्य—आपने कुछ काल तक सामा बूला आर्य-कन्या-पाठशाला में कार्य किया था।

श्री महता जैमिनीजी का शुभागमन तथा प्रचार—आपके व्याख्यानों का जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा, आपने अंग्रेज़ी

तथा हिन्दी दोनों में व्याख्यान दिये। आपने फीज़ी भर में प्रचार किया। आपके व्याख्यानों को गोरे भी बड़े प्रेम से सुनते थे।

विद्यार्थियों का विद्या-प्राप्ति के लिये भारत-गमन—फीज़ी में उच्च शिक्षा का उचित प्रबन्ध न होने के कारण श्री पं० गोपेन्द्र-नारायणजी ने कई बालक बालिकाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त कराने के लिये भारत भेजने का वहाँ की आर्यप्रतिनिधि सभा से प्रबन्ध कराया, जिनमें से बालक डी. ए. वी. काल्लेज कानपुर, देहरादून और गुरुकुल वृन्दावन और कन्याएं कन्या महाविद्यालय जालन्धर तथा कन्या गुरुकुल देहरादून में पढ़ रही हैं।

गुरुकुल वृन्दावन की फीज़ी के प्रति सेवा—यहां पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि फीज़ी से गये समस्त छात्रों का प्रबन्ध गुरुकुल वृन्दावन के अधिकारी ही करते रहे। उनकी ओर से एक सज्जन कलकत्ते तक आकर जहाज़ पर से बालकों को लिवा लेजाया करते थे। गुरुकुल वृन्दावन ने फीज़ी के बालक बालिकाओं के लिये जो प्रशंसनीय कार्य किया है उसके लिये फीज़ी निवासी उनके सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

परस्पर सम्बन्ध—हिन्दू संगठन सभायें तथा सनातन-धर्म महा-मण्डल आर्य्यसमाज के साथ मिलकर कार्य करते हैं। जिसका शुभ फल यह हुआ है कि एक वर्ष में २५० ग़ैर हिंदुओं की शुद्धि हुई है।

फीज़ी के निवासियों में मुख्य २ कार्य-कर्ता—श्री म० जे. पी. महाराजजी, म० इन्द्रनारायणजी, म० शिवदत्तजी, म० बिहारीलालजी, म० मङ्गलसिंहजी, म० ननकूजी, म० गाज़ीप्रताप-सिंहजी, म० सोचारामजी, म० राधाकृष्णजी, म० बद्री महाराजजी, म० वासुदेवरायजी, म० अवधरामजी, म० सेठ हीराला-

५

लजी, म० रामनारायणजी, म० शिवनन्दनजी तिवाड़ी, म० महादेवजी महाराज, म० हरदयालजी, म० श्रारी महाराज, म० बालेश्वरजी पाण्डे, म० संतोषसिंहजी, म० रणधीरसिंहजी, म० रामग़रीबसिंहजी, म० बलदेवसिंहजी, म० कालूसिंहजी, म० रामसिंहजी, म० चौधरी महाराज, म० द्वारकादत्तजी, म० शिवदत्तजी शर्मा, म० हरदयालजी, म० चौधरी रामनाथजी, श्री पं० वासवानन्दजी, श्री म० शङ्करप्रतापजी, श्रीमती जे. पी. महाराज, श्रीमती कन्हईसिंहजी, तथा श्रीमती जंगबहादुरजी।

फ़ीज़ी की महती आवश्यकताएं—यहाँ एक आर्य्य बैरिस्टर तथा एक योग्य और अनुभवी आर्य डा० की अत्यन्त आवश्यकता है। क्या कोई आर्य-सज्जन इन स्थानों की पूर्ति करेंगे।

सुरिनाम (डच गायना)

यह प्रदेश दक्षिण अमरीका के उत्तर में फ्रेञ्च गायना और ब्रिटिश गायना के मध्य में है। सन् १९३१ की मनुष्यगणना के अनुसार डच गायना में भारतीयों की जनसंख्या ३६,१५० है। पारामारीबो डच गायना की राजधानी और यहाँ का मुख्य बन्दरगाह है।

आर्यसमाज के प्रचार से पूर्व की दशा—अन्य उपनिवेशों के मुक़ाबले में यह उपनिवेश भारतवर्ष से अधिक दूर है। इसलिये यह स्वाभाविक था कि यहाँ आये हुये भारतीय अन्य निवासियों के मुक़ाबले में अपने आचार विचार को अत्यन्त वेग के साथ तिलाञ्जलि देने लगे। बहुतसे लोग ईसाई बन गये और बहुत से केवल नाममात्र के हिन्दू थे। यदि आर्यसमाज की शिक्षा वहाँ न पहुँचती तो इसमें कोई सन्देह नहीं था कि कुछ वर्षों में वहां केवल यह बात कहावत मात्र रह जाती कि

कोई हिन्दू नाम के लोग अपनी उदरपूर्ति के लिये यहाँ भी कभी आकर बसे थे।

आर्यसमाज के प्रचार का आरम्भ—सन् १६२६ में यहाँ आर्यसमाज का प्रचार आरम्भ हुआ। प्रचार-कार्य के आरम्भ में सब से अधिक सहायता वैदिक साहित्य से मिली। जो कुछ अल्प वैदिक साहित्य यहाँ मनुष्यों के पास था उसे पढ़ कर अधिक पढ़ने की प्रबल आकांक्षा होने लगी। उत्साही धर्माभिलाषी मनुष्यों ने और अधिक पुस्तकें मंगाना आरम्भ कर दिया। जनता उसे उत्सुकता से पढ़ने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि धार्मिक और सामाजिक अवनति रूपी निद्रा में पड़ी हुई इस पौराणिक जनता के कानों में वैदिक शिक्षा का सिंह नाद श्रुतिगोचर होने लगा जिससे वह शनैः शनैः अपनी धार्मिक तथा सामाजिक गिरावट का अनुभव करने लगी। वह लोग धर्मान्वेषण में भाग लेने लगे। जहाँ अभी तक अन्धविश्वास फैल रहा था वहाँ और विशेषतः नवयुवकों में तर्क को स्थान दिया जाने लगा। उन लोगों ने अनुभव किया कि तर्क की कसौटी पर वैदिकधर्म ही सच्चा और ठीक निकलता है अतः समझदार जनता का झुकाव इसी ओर होने लगा।

श्री महता जैमिनीजी का प्रचार-कार्य—इसी समय यहाँ आप का आना हुआ। आप के प्रभावशाली और उत्कृष्ट व्याख्यानों से वहाँ की पौराणिक तथा आर्यजनता मुग्ध हो गई। इसका फल यह हुआ कि वैदिक धर्मावलम्बियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी।

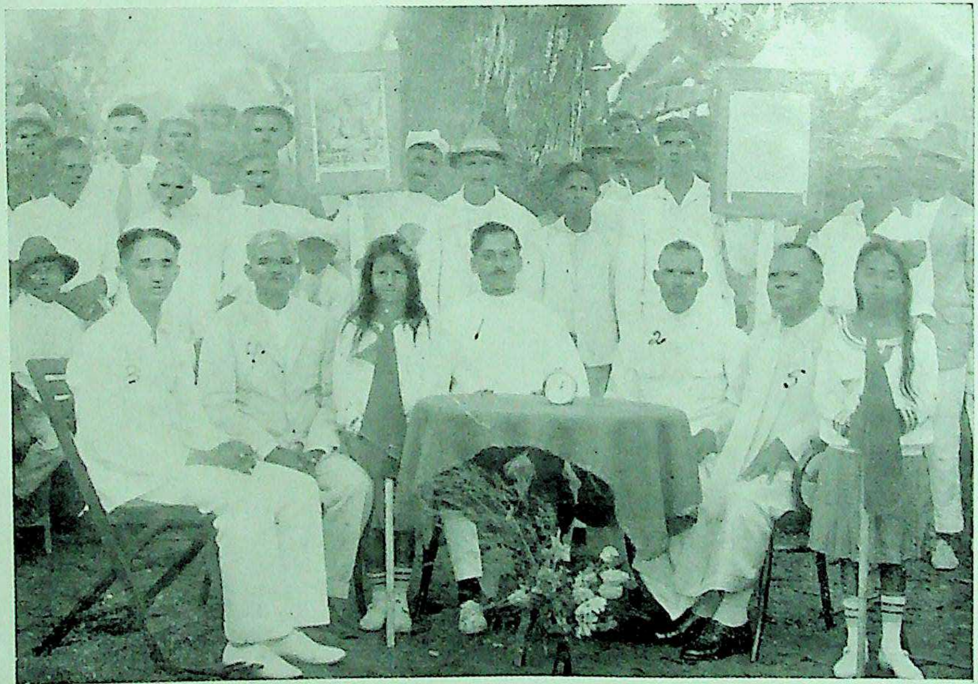
आर्यसमाज की स्थापना—५ फरवरी सन् १६३० को आर्य दिवाकर नाम से आर्यसमाज की स्थापना होकर सरकार द्वारा रजिस्टरी हो गई। समाज के उत्तम उद्देशों, कार्यकर्ताओं की

प्रयत्नशीलता, निस्वार्थता तथा निर्भयता के कारण अब मनुष्यों में समाज के प्रति विश्वास होता जाता है और सदस्यों की संख्या बढ़ती जाती है।

आर्यसमाजों का विवरण।

संख्या समाज		आर्यसमाज के संचालकों के नाम	स्थान समाज	संख्या सभासद
१	श्री०	हीरासिंहजी	पारामारीबो	११०
२	,,	अवतारसिंहजी	सरआका	६०
३	,,	जैजैरामजी	करनाल र० २	१५
४	,,	सूर्यसिंहजी	कमेसाइरी	१५
५	,,	रामनारायणजी	कसावाहोलो	३०
६	,,	सोमई सरदारजी	पाटापासी	३०
७	,,	सुखरामजी	किरबलवेवती	१०
८	,,	श्यामलालजी	कपटाने वेवती	४०
९	,,	दुरबलीजी	लौखक डमबोर्ग	३०
१०	,,	शिवरनसिंहजी	फैरलान्थ	७०
११	,,	हुक्मसिंहजी	हन्सूमेखर्क	१५
१२	,,	शिवनायकजी	मीरपमबोर्ग	२४
१३	,,	रामदासजी	अलखमार	५०
१४	,,	सरजूरामजी	करमभोग	३५

अन्य मुख्य कार्यकर्ता—१—श्री जगमोहनसिंहजी, २—श्री दयारामजी, ३—श्री उदयभानुजी, ४—श्री मथुराप्रसादजी, ५—श्री रामप्रसादजी, ६—श्री रामेश्वरदयालजी, ७—श्री घिसईप्रसादजी, ८—श्री चेतरामजी, ९—श्री मथुराप्रसाद द्विवेदीजी, १०—श्री क्षेरा-सुमारू साहू, श्री जोगेश्वर मिश्र।



आर्य-दिवाकर सभा डच गायना के अंतरंग सदस्य तथा कुछेक कार्यकर्ता

श्री गिरजादयालजी शर्मा—आप यहाँ ६ वर्ष से आर्य-समाज का अपनी शक्ति तथा योग्यतानुसार प्रचार कर रहे हैं। आपने यहाँ वैदिक संस्कारों का अच्छा प्रचार किया है।

आर्य-दिवाकर खेल कमेटी—यहाँ नवयुवकों ने आपस में प्रेम और एकता बढ़ाने और आर्यसमाज की सेवा करने के लिये "आर्य-दिवाकर खेल कमेटी" नामक समिति बनाई जिसमें निम्नलिलित चार विभाग हैं।

१ भजनमण्डली, २ फुटवाल, ३ क्रिकेट, ४ व्यायाम, सन् १९३१ में इन विभागों के क्रमशः दलपति श्री प्यारेलालजी, श्री सुखदेवजी मडाश, श्री चेतरामसिंहजी तथा श्री हीरासिंहजी थे। समिति के प्रधान श्री सूर्यप्रसादजी शुक्ल हैं।

इस समिति ने वहाँ की जनता को आर्यसमाज के प्रति आकर्षित करने में बड़ा सहयोग दिया है।

आर्यसमाज का अन्य कार्य—४ जुलाई सन् १९३० को समाज ने एक भूमि खरीदी है जिसमें गोशाला, पाठशाला तथा अनाथालय के लिये पर्याप्त स्थान है। आशा है कि ये संस्थायें इस भूमि में अब अवश्य खुल गई होंगी।

निकेरी (डच गायना)

आर्यसमाज के प्रचार-युग का आरम्भ—सबसे पूर्व सन् १९२६ में महर्षि दयानन्दजी रचित पुस्तकों को अवलोकन करने का सौभाग्य यहाँ के भारतीयों को हुआ।

श्री महता जैमिनीजी का प्रचार—सन् १९२९ में आप यहां ब्रिटिश गायना से आये और एक सप्ताह में तीन व्याख्यान देकर ब्रिटिश गायना वापिस चले गये।

आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण—सन् १९३१ में यहाँ आर्यसमाज मन्दिर बनकर तय्यार हो गया है। सभासदों की संख्या ५० है। पुस्तकालय भी बन चुका है।

कार्यकर्ता—श्री अवधराज, उदयराजसिंह, श्री कुञ्जबिहारीसिंह, श्री देवदत्तसिंहजी हैं।

ब्रिटिश गायना

यह दक्षिण अफ्रीका के उत्तर में है। इसके उत्तर में उत्तरीय एटलान्टिक सागर, दक्षिण में ब्रेज़िल का फैला हुआ बड़ा देश, पूर्व में डच गायना और पश्चिम में बेनेज्यूला है। जार्ज टाउन इसकी राजधानी और बन्दरगाह है।

सन् १९३१ को मनुष्यगणना के अनुसार इसमें भारतीयों की जनसंख्या १, ३१, ९१९ है।

यहाँ भी आरम्भ में भारतीय कुली के रूप में मज़दूरी करने के लिये आये थे। इनकी दशा यहाँ पर अत्यन्त शोचनीय है। यहाँ पर जितने भी व्यवसाय के बड़े २ काम हैं वह सब अंग्रेज़ों के हाथ में हैं।

यहाँ पर हीरा, लाल, सोना, लोहा, मिट्टी का तेल, रबर, चीनी और धान अधिकता से होते हैं जिनमें धान को छोड़ सब काम गोरे लोगों के हाथ में है। धान बहुत सस्ता बिकता है।

आर्यसमाज के प्रचार-युग से पूर्व की दशा—भारतीयों का यहाँ किसी प्रकार का भी संगठन न था, केवल नाममात्र की एक ईस्ट इण्डियन ऐसोसियेशन नाम की संस्था थी उसमें उल्लेखनीय डा० जंगबहादुरसिंहजी थे। उसी प्रकार नाममात्र की इण्डियन कांग्रेस थी जिसके सभापति म० जे० ए० लक्खू

थे जो आर्यभाषा का नाम तक नहीं जानते थे, परन्तु अब यह कांग्रेस भी टूट गई। यहाँ हिन्दी भाषा का प्रचार बिलकुल नहीं था। यहाँ पर सहस्रों की संख्या में मदरासी और अन्य भारतीय ईसाई हो चुके थे। यहाँ के हिन्दुओं में बहुत से मदिरा-पान करते हैं और फिर भी अपने को सनातनी कहते हुये लज्जित नहीं होते।

आर्यसमाज की स्थापना और रजिस्टरी—२५ अप्रेल सन् १९२८ को यहाँ आर्यसमाज की स्थापना होकर रजिस्टरी हो गई है।

आर्यसमाज और आर्यों की संख्या—सात स्थानों पर समाजें स्थापित हो चुकी हैं। ३५ स्थानों पर वैदिकधर्म का प्रचार हो चुका है। उन सज्जनों की संख्या जो वैदिकधर्म के झण्डे के नीचे आचुके हैं और अपने को आर्यसमाजी कहते हैं ५०० के लगभग हैं।

हिन्दी प्रचार—श्री पं० चन्द्रशेखरजी तथा श्री पं० लक्ष्मण-प्रसादजी ने हिन्दी प्रचार में बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है। यहाँ की पौराणिक हिन्दू जनता अपने बालकों को हिन्दी भाषा तो पढ़ाना ही नहीं चाहती। वे हिन्दी भाषा पढ़ाने से कोई लाभ नहीं समझते, क्योंकि वहाँ अंग्रेज़ी का बहुत प्रचार है, परन्तु दोनों प्रशंसित सज्जन अपनी धुन के बड़े पक्के हैं और इस शुभ कार्य को अटूट लगन से करते ही रहते हैं।

यहां श्री महता जैमिनीजी भी आये थे। आपने एक नागरी पाठशाला का उद्घाटन किया था और कई व्याख्यान भी दिये।

आर्यसमाज का प्रचार—श्री पं० चन्द्रशेखरजी कई वर्ष से आर्यसमाज का प्रचार-कार्य कर रहे थे। कुछेक वर्ष पश्चात्

श्री पं० लक्ष्मणप्रसादजी भी भारतवर्ष से पहुँच गये। इन दोनों के प्रभावशाली व्याख्यानों से वहाँ के लोगों का ईसाई होना, विवाहोत्सवों के अवसर पर अश्लील गीत गाना इत्यादि बहुत कुछ कुप्रथाएं उठ गईं। कुछ वर्ष के बाद भाई परमानन्दजी का शुभागमन हुआ। भाईजी के कई प्रभावशाली व्याख्यान हुये और आपका आना उन दोनों पूर्वोक्त टमटमाते हुये दीपकों में तेल पड़ने के समान हुआ। उस समय से आर्यसमाज का प्रचार-कार्य और अधिक वेग से होने लगा है।

वेस्ट इन्डीज़ के इन समस्त उपनिवेशों में श्री पं० गिरजा-दयालजी शर्मा ६ वर्ष से आर्यसमाज का प्रचार कर रहे हैं।

ट्रिनीडाड

ट्रिनीडाड ब्रिटिश गायना और वेनेज्यूला के उत्तर में एक द्वीप है। यह द्वीप भी अंग्रेज़ों के अधिकार में है।

सन् १९३१ की मनुष्यगणना के अनुसार यहाँ पर भारतीयों की जनसंख्या १,२०,००० के लग भग थी।

ट्रिनीडाड के उत्तर में पास ही टोबेगा नामक एक और छोटासा द्वीप है। ट्रिनीडाड और टोबेगा को मिलाकर भारतीयजन संख्या १,३७,८३२ है।

भारतीयों की अवस्था—यहाँ पर भारतीय पश्चिमीय सभ्यता में पल रहे हैं। नाच रंग और मदिरापान में लिप्त रहते हैं। प्रत्येक भारतीय के घर में प्रायः अंग्रेज़ी बोली जाती है। बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि बहुतसे नवयुवक और नवयुवतियां नागरीभाषा बोल ही नहीं सकतीं। इसका कारण अङ्गरेज़ी शिक्षा और सभ्यता का खूब प्रचार और नागरीभाषा और वैदिक सभ्यता के प्रचार के लिये उचित साधन का अभाव है।

श्री महता जैमिनीजी का प्रचार—दिसम्बर सन् १९२८ में आप यहाँ पधारे। आपने यहाँ कई व्याख्यान नागरी और अंग्रेज़ी में दिये। आप के अंग्रेज़ी के व्याख्यानों का वहाँ के ग़ैर भारतीयों के ऊपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

श्री पं० गिरजादयालजी शर्मा ने भी यहाँ आकर प्रचार किया है। अब तक वहाँ पर ८ स्थानों पर प्रचार हो चुका है और आर्यों की संख्या १०० से अधिक है।

वैदिकधर्म प्रचारार्थ साधनों की आवश्यकता—भारतीय प्राचीन शिक्षा प्रचार के लिये एक ऐसे योग्य अनुभवी सज्जन की आवश्यकता है जो अंग्रेज़ी भाषा का विद्वान् होता हुआ हिन्दी तथा संस्कृत का भी विद्वान् हो। यह सज्जन यहाँ आकर गुरुकुल प्रणाली की स्थापना करें। यहाँ से भारतीय सुन्दर दृश्यों के लिये चित्र, जो कि मेजिक लालटेनों द्वारा दिखाये जासकें, भिजवाये जावें।

ट्रिनीडाड में भारतीय सभ्यता के शुभचिन्तक श्री रामेश्वर मिश्रजी—आप यहां सब से अधिक वैदिक सभ्यता के प्रचार के लिये चिन्तित रहते हैं। आर्योपदेशकों को आपसे प्रचारमें बहुत सहायता मिल सकती है। आप की पुत्री कुमारी सरयूदेवी ट्रिनीडाड में हिन्दी प्रचार का सराहनीय उद्योग कर रही हैं।

लङ्का

यद्यपि लङ्का में अभी तक नियमित रूप से आर्यसमाज की स्थापना नहीं हुई है, केवल श्री स्वामी शङ्करानन्दजी ने ही वहां जाकर वहाँ के निवासियों को अपने कई मनोहर व्याख्यानों द्वारा

वैदिक-सन्देश सुनाया था फिर भी क्योंकि लङ्का का सम्बन्ध आर्यावर्त तथा वैदिक सभ्यता के साथ सृष्टि के आदि से रहा है अतः हम प्रशंसनीय श्री स्वामीजी की इस यात्रा का विशेष महत्व के साथ वर्णन करना चाहते हैं।

लंका में भारतीयों की जनसंख्या ६,६७,२०५ है।

श्री स्वामी शङ्करानन्दजी का कोलम्बो में प्रचार—आप ७-७-२९ को कोलम्बो पहुँचे। आप राजा षणमुखमजी के बंगले पर ठहरे थे। आपने यहाँ सहस्रों को संध्या सिखाई, यज्ञोपवीत धारण कराया और प्राणायाम सिखाया। आपने कोलम्बो में निम्नलिखित स्थानों पर भिन्न २ विषयों पर व्याख्यान दिये:—

टाउनहाल, विवेकानन्द सोसाइटी, वेलवला मन्दिर, बौद्ध गर्ल्स कालिज, आनन्द कालिज, वेसेलियन कालिज, यूनिवर्सिटी होस्टल, विद्यालङ्कार कालिज (बौद्धों के धार्मिक-शिक्षा का स्थान), श्री राजा षणमुखम के निवासस्थान।

आपने वहां २७ हवन, १४३ पुरुष और ९८ स्त्रियों का यज्ञोपवीत संस्कार कराया। यहाँ से ३-९-२९ को आप केण्डी गये।

केण्डी स्थान का विवरण—केण्डी प्राचीन राजाओं की राजधानी थी। यह पर्वतीय प्रान्त में बड़ा सुन्दर नगर है। यहां जल का एक सुन्दर सरोवर है। अन्तिम तैमिल राजा जो लङ्का से निकाला गया था उसका राज-भवन वर्तमान है। भगवान् बुद्धदेव का एक विशाल मन्दिर है जिसमें उनका एक दांत सुरक्षित रक्खा हुआ है जो बौद्ध सम्प्रदाय के लिये एक पवित्र और दर्शनीय वस्तु है। वहां का 'वानस्पत्योद्यान' जगत् के प्रख्यात उद्यानों में से एक है। उसमें एक प्रदर्शन-गृह भी है।

मुनीश्वरम का विवरण—यह कहा जाता है कि यहां पर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी महाराज ने लङ्का से विदा होते समय संध्या, स्नान तथा अग्निहोत्र करके विभीषण तथा लंका की प्रजा से अन्तिम विदा लेकर विमान में बैठ अयोध्या को प्रस्थान किया था। वहां अभी तक वह सरोवर विद्यमान है जिसमें श्री रामचन्द्रजी महाराज ने स्नान किया था। मन्दिर में एक संस्कृत पुस्तकालय है, परंतु खेद है कि कोई संस्कृत पाठशाला नहीं है।

नवोरलिया का विवरण—यह स्थान केण्डी से ४० मील की दूरी पर है और ६००० फ़ीट से अधिक ऊंचाई पर है। यह स्थान रावण का गर्मी के दिनों में रहने का स्थान कहा जाता है। नवोरलिया रावणालय का उलटा अर्थात् अपभ्रंश मालूम होता है। यहां का दृश्य बड़ा सुन्दर और भूमि बड़ी उर्वरा है। यहाँ एक सुन्दर सरोवर भी है। यहाँ से ४ मील के अन्तर पर "सीता एलिया" नाम से प्रसिद्ध एक स्थान है। यह कहा जाता है कि पूज्या सीता महारानी को इसी पर्वत पर रक्खा गया था। इस पर्वत के नीचे "हग्गल गार्डन" नाम का बग़ीचा प्रसिद्ध है। इसे रावण का विहार-स्थल बताया जाता है। सीता एलिया में अभी तक अशोक वृक्ष है और एक छोटीसी नदी भी है। कहा जाता है। इसमें श्री सीताजी स्नान किया करती थीं। उस नदी पर पौराणिकों ने एक छोटासा राम-मन्दिर भी बनवाया है।

ट्रिनको माली का विवरण—यह लङ्का के पूर्वीय घाट पर बन्दरगाह है। यह कुछ वर्ष पूर्व लड़ाई के जहाज़ों का अड्डा था, परंतु अब यह केवल युद्ध सामग्री का संग्रह-स्थल है। अब जहाज़ी अड्डा सिंगापुर बन गया है।

बेटी कालोंश्रा का विवरण—यह पूर्वीय घाट पर तीन ओर जल से घिरा हुआ एक सुन्दर नगर है। यहाँ डच लोगों के समय का एक क़िला है। यहां ईसाई मत का बड़ा ज़ोर है और बहुत से पौराणिक हिन्दू ईसाई होचुके हैं।

अनुरादपुरा का विवरण—यह नगर बौद्ध लोगों की प्राचीन राजधानी रहा है। यहां पर बड़े २ स्तूप हैं, राजा अशोक के पुत्र और पुत्री ने (जिन्होंने बौद्धमत प्रचारार्थ आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया था) इसी नगर में आकर बौद्धी-वृक्ष की शाखा लगाई थी। यह स्थान बौद्धमत का बड़ा केन्द्र है। बौद्ध लोग अब भी उस वृक्ष की पूजा करते हैं। यहां पुराने बौद्ध मकानों के खण्डहर मिलते हैं और एक विशाल सरोवर है।

जफाना का विवरण—यह प्राचीन हिन्दू राजाओं की राजधानी थी। यहाँ एक किला है। यहाँ आर्यों का एक बग़ीचा और एक श्मशान था। यह भूमि सरकारी आफ़िसों में अब भी आर्यों के नाम से लिखी जाती है। यह बात प्राचीन समय में वहाँ पर आर्य राज्य की पुष्टि करती है। स्वामी शङ्करानन्दजी ने यहाँ पर भिन्न २ विषयों पर १३ व्याख्यान दिये।

श्री स्वामीजी ने २६ अक्टूबर सन् १९२७ को कोलम्बी से भारतवर्ष के लिये प्रस्थान किया।

लङ्का का साधारण विवरण—लङ्का बड़ा सुन्दर और चित्ताकर्षक प्रदेश है। यहाँ की पृथिवी बड़ी उर्वरा और फल फूलों से परिपूर्ण है। उत्तर भाग में गर्मी अधिक पड़ती है, परन्तु दक्षिण भाग मध्य प्रकार के जलवायु वाला तथा रम्य है। वहां के मूल निवासी सिंहाली कहलाते हैं। कुछ मुसलमान हैं जो उत्तरी अफ्रीका से आकर यहाँ बस गये हैं। कुछ सिंहाली

लोग भी मुसलमान बना लिये गये हैं। उनसे अधिक संख्या में ईसाई लोग हैं जो कि डच और पुर्तगाल वालों के शासनकाल में सिंहालियों से बनाये गये थे। सबसे अधिक संख्या बौद्धमतावलम्बियों की है। जिनके अन्दर स्वदेश और स्वजाति का अभिमान है। बौद्धमत का पठनपाठन पाली भाषा में होता है, बौद्धभिक्षुओं ने आयुर्वेद का विशेष अभ्यास किया था और अभी तक आयुर्वेद का प्रचार लङ्का में विशेष है। आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिये ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही पढ़े जाते हैं। संस्कृत का ज्ञान भी लंका वासियों में विद्यमान है। रामकृष्ण परमहंस संघ के कई मन्दिर बन चुके हैं, परन्तु दुःख है कि शुद्ध सनातन वैदिक-धर्म (आर्य्यसमाज) का अभी तक कोई मन्दिर नहीं है।

आजकल जो आदमपुल के नाम से प्रसिद्ध है यह वही श्वेतवंद रामेश्वर का पुल है जिसे श्री रामचन्द्रजी महाराज ने अपने निपुणशिल्पविशेषज्ञ नल तथा नील से बनवाया था।

धनुषकोटि वह स्थान है जहाँ से श्री राम ने रावण को सुलह अथवा युद्ध का अन्तिम सन्देश भिजवाया था। सबसे विशेष बात यह है कि बुद्धदेव के मन्दिरों में विभीषण की मूर्तियां योग्य स्थान में स्थापित हैं और वहाँ के निवासी उस मूर्ति को एक महान धार्मिक राजा की मूर्ति मान कर पूजते हैं। विभीषण की मूर्ति लंका के अतिरिक्त अन्य किसी देश में रही है। इन बातों से यह निर्विवाद निश्चय हो जाता है कि यह वही लंका है जहाँ रावण का शासन रहा।

प्रचलित भाषायें—यहां पर पाली, तामिल, गुजराती, संस्कृत और अंग्रेज़ी का अधिक प्रचार है। अतः वैदिक-धर्म का प्रचार कर ने वाले उपदेशकों को इन भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना

आवश्यक है। प्रचार के लिये आर्य्यसमाज सिद्धान्त सम्बन्धी पुस्तकों और ट्रेक्टों का तामिल भाषा में अनुवाद होना चाहिये।

बेंकोंग

भारतीयों का आगमन—बेकोंग श्याम की राजधानी है। सब से प्रथम संयुक्त प्रान्त के ज़िले गोरखपुर, आज़मगढ़, फैज़ाबाद तथा बलिया से कुछ नवयुवक रोज़गार की तलाश में यहाँ आये और वे लोग दरबानी का कार्य करने लगे। धीरे धीरे इनकी संख्या बढ़ने लगी और प्रत्येक कार्यालय में संयुक्त प्रान्त के मनुष्य ही दरबानी का कार्य करते हैं। उनमें जो शिक्षित थे वे क्लर्की का कार्य करने लगे।

श्याम में भारतीयों की संख्या सन् १६३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार ५००० है।

आर्यसमाज के युग का आरम्भ—इन शिक्षितों में कई भारतवर्ष में ही आर्यसमाज के संसर्ग में आ चुके थे इसलिये सन् १६१७ में कुछ लोगों के हृदय में आर्यसमाज स्थापित करने की प्रेरणा हुई और उन सज्जनों ने आर्यसमाज के प्रचार और उसके संगठन का कार्य आरम्भ कर दिया। कुछ काल तक समाज की बैठक उन्हीं सज्जनों के घरों पर होती रही। शनैः २ सभासदों की संख्या बढ़नी आरम्भ हुई और समाज का कार्य दिनोदिन उन्नति करता गया।

आर्यसमाज की स्थापना—२३ मई सन् १६२० ई० को ५० सज्जनों की उपस्थिति में सभा का नाम वैदिकधर्मप्रचारिणी सभा रक्खा गया। तभी से समाज का साप्ताहिक अधिवेशन सुचारुरूप से होने लगा। उस समय निम्नांकित सज्जन समाज के पदाधिकारी चुने गये:—

प्रधान रामदेवसिंहजी, उपप्रधान पलकधारीसिंहजी, मन्त्री ठाकुरसिंहजी,. कोषाध्यक्ष रामपतिरायजी (गोरखपुर), पुस्तकाध्यक्ष चौ० वंशराजदासजी (गोरखपुर)। इनके अतिरिक्त उस समय ६४ सदस्य थे।

आर्यसमाज का कार्य—२४ मार्च सन् १९२१ को होली उत्सव के साथ २ समाज का प्रथम वार्षिकोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया जिसका प्रभाव जनता पर बड़ा अच्छा पड़ा और सदस्यों की संख्या बढ़ने लगी।

१७ सितम्बर सन् १९२२ को एक बृहत् सभा की गई। उसमें भवन बनाने का प्रस्ताव पेश किया गया जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ और धन की अपील करने पर तत्काल ही ९९३ टिक्कल * उसी समय प्राप्त हो गये। दो हज़ार टिक्कल में समाजमन्दिर ठेके पर बन कर तैयार हो गया और ३ मार्च सन् १९२३ को वैदिकधर्म प्रचारिणी सभा का तृतीय वार्षिकोत्सव समाज के नये भवन में बड़े ही सजधज के साथ मनाया गया।

ता० २ दिसम्बर सन् १९२३ को एक विशेष अधिवेशन करके वैदिकधर्मप्रचारिणी सभा के स्थान पर इस सभा का नाम आर्यसमाज रख दिया गया तभी से इसका प्रचार-कार्य उन्नत रूप में चला आता है। जिस भूमि में यह समाजमंदिर बना था वह सरकारी थी इसलिये उस भूमि को तीन हज़ार टिक्कल में खरीदा गया। सदस्यों की संख्या लगभग २०० है। सभासद् अधिकतर संयुक्त प्रान्त के हैं। इस समाज का सम्बन्ध संयुक्त प्रान्त की प्रतिनिधि सभा के साथ है।

---

* १ टिक्कल सवा रुपये के बराबर होता है।

समाज का यू० पी० आर्यप्रतिनिधि सभा से सम्बन्ध—यह समाज १८ अप्रेल सन् १९२४ को यू० पी० आर्यप्रतिनिधि सभा में प्रविष्ट हुई है।

आर्यों की श्रद्धा—यद्यपि सभासदों की न कोई बड़ी पोज़ीशन है, न वे बड़ी विद्या और योग्यता वाले ही हैं तो भी उनके भीतर वैदिकधर्म के प्रति अगाध प्रेम, श्रद्धा और भक्ति है। यह लोग भारत की आर्य संस्थाओं को समय २ पर अपनी शक्ति अनुसार दान भी दिया करते हैं।

हिन्दू और स्यामी जनता की सहानुभूति—यद्यपि सभासदों की संख्या न्यून है किन्तु साधारणत: हिन्दू जनता की सहानुभूति आर्यसमाज के साथ बहुत है। जब कभी समाज किसी संस्था के निमित्त धन की अपील करता है तो हिन्दू जनता यथाशक्ति सहायता करती है। स्यामी जनता भी आर्यसमाज के प्रति सहानुभूति रखती है। इसलिये यदि कोई उपदेशक यहाँ आकर स्यामी भाषा सीख कर स्थायी रूप से कार्य करे तो आशा है कि स्यामी जनता की रुचि वैदिकधर्म की ओर शीघ्रता से हो जावे।

पुस्तकालय—समाज के अन्दर एक छोटा सा पुस्तकालय भी है जिसमें महर्षि दयानन्द के वेद-भाष्य और दूसरे आवश्यक सब ग्रन्थ विद्यमान हैं। सभासद् भी अपने गृहों पर काफ़ी पुस्तकें रखते हैं, जिससे उनमें स्वाध्याय की रुचि बढ़ रही है।

श्री डा० भगतरामजी सहगल—आपने यहां आकर प्रचार किया था।

सिङ्गापुर

सिंगापुर ब्रिटिश मलाया स्टेट सेटिलमेन्ट की राजधानी है और बड़ा प्रसिद्ध बन्दरगाह और जहाज़ों का केन्द्र है। ब्रिटिश मलाया में सन् ३१ की मनुष्यगणना के अनुसार भारतीय जन-संख्या ६,२४,००६ है।

आर्यसमाज की स्थापना—८ अक्टूबर सन् १९२७ को केवल २० सभासदों द्वारा श्री डाक्टर भगतरामज़ी सहगल के परिश्रम से इस समाज की स्थापना हुई।

आर्यसभासदों की संख्या—लगभग २०० है। इनमें कुछेक ऐसे हैं जो नियम से समाज का चन्दा नहीं देते हैं।

समाजमन्दिर—अभी तक यहाँ समाजमन्दिर नहीं बन पाया है, बनवाने के लिये प्रयत्न हो रहा है। इसके बनने के लिये अब तक एक सहस्र डालर जमा हो चुके हैं।

समाज का कार्य—साप्ताहिक सत्संग नियमित रूप से होता है। इस समाज ने अब तक २० शुद्धियाँ की हैं और अबलाओं और अनाथों की सहायता करती रहती हैं। समाज का कार्य अच्छा है।

प्रचारक—वहां कई उपदेशक जा चुके हैं, परन्तु सिवाय श्री डा० भगतरामजी सहगल के अन्य किसी का कार्य सराहनीय नहीं रहा। प्रचार करने के लिये अंग्रेज़ी और तामिल भाषाओं का ज़ानना बहुत आवश्यक है, क्योंकि समाज में कई तामिल सभासद् भी हैं। जो प्रचारक अमेरिका जापान इत्यादि जावें उनको सिंगापुर भी ठहरना चाहिये।

अन्य मनुष्यों का आर्यसमाज के प्रति व्यवहार—कुछेक जाति पाँति के झगड़े में पड़े हुओं को छोड़ सब का आर्यसमाज के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार है।

प्रधान व मन्त्री—श्री पं० वासुदेवजी शर्मा समाज के प्रधान हैं और श्री म० कामतारामजी मंत्री हैं। दोनों खूब काम करते हैं।

कोलालामपुर आर्यसमाज—कोलालामपुर मलाया स्टेट में एक नगर है। यहाँ आर्यसमाज स्थापित है। यहाँ श्री पण्डित कन्हैयालालजी आर्योपदेशक, आर्यविद्या सभा काशी ने प्रचार किया है।

मैदान आर्यसमाज—मैदान सुमात्रा टापू की राजधानी है, यहाँ आर्यसमाज स्थापित है। रायसाहब हकीम भक्तरामजी समाज के मन्त्री हैं। यहाँ पर श्री पं० कन्हैयालालजी ने जाकर प्रचार किया है।

जावा टापू में प्रचार—जावा टापू के कई स्थानों में श्री पण्डित कन्हैयालालजी ने जाकर प्रचार किया है।

सुमात्रा तथा जावा टापू के समस्त आदि-निवासी मुसलमान हो गये हैं, परन्तु उनकी स्थिति बिलकुल मलकानों की सी है। यदि वहाँ संगठित रूप से प्रचार और शुद्धि का कार्य किया जावे तो बड़ी सफलता हो सकती है।

पं० कन्हैयालालजी का अन्य स्थानों में प्रचार—आपने क्लाङ्गशो टापू, अमोई टापू, जापान और शंघाई में भी जाकर व्याख्यान दिये हैं।

बग़दाद

बग़दाद इराक़ की राजधानी है। यूरोपियन महासमर से पूर्व इराक़ टर्की के खलीफा के आधीन था, परन्तु बाद को अंग्रेज़ों के आधीन हो गया। बग़दाद टिगरीज नदी के किनारे पर बसा हुआ है।

भारतीयों का आगमन—यद्यपि यूरोपियन महासमर से पूर्व कुछ थोड़े से भारतीय व्यापार के सम्बन्ध में यहाँ आया जाया करते थे और कुछ बस भी गये थे, परन्तु इनका अधिक संख्या में आना और बसना इस समर के काल में हुआ। बहुत से लोग जो लड़ाई के सिलसिले में यहाँ फौज़ के दफ़्तरों में, रेल व पब्लिक वर्क्स इत्यादि महकमों में नौकर होकर आये थे उनमें से बहुतसे यहीं पर रह गये।

इराक़ में भारतीयों की संख्या २,५९६ है

आर्यसमाज की स्थापना—चूँकि यह देश मुसलमानों के पूर्वजों का देश था, उनकी ईश्वर-प्रार्थना के लिये पूर्व से ही सैकड़ों मसज़िदे थीं, अंग्रेज़ों का राज्य स्थापित हो चुका था, ईसाइयों के हर स्थान पर गिरजे बन चुके थे, यहूदी पूर्व से ही यहाँ काफ़ी संख्या में थे, उनकी पूजापाठ का सब प्रकार का प्रबन्ध था, परन्तु इन हिन्दुओं के लिये मिलकर पूजापाठ करने के लिये कोई स्थान नहीं था। अतः सन् १९१९ में कुछेक उत्साही और निःस्वार्थ कार्यकर्ताओं ने बग़दाद में आर्यसमाज की स्थापना की।

आर्यसमाज की रजिस्टरी—सन् १९२२ में इस समाज को वहां की सरकार द्वारा रजिस्टरी हो चुकी है।

आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य कोई भारतीय संस्था वहाँ रजिस्टर्ड नहीं है।

आर्यसभासदों की संख्या—सन् १९१७ में यहाँ सभासदों की संख्या २५० के लगभग पहुँच चुकी थी, परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि अब सभासद् केवल ६० के लगभग हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि बहुतसे सभासद् अपने घर बार सहित भारतवर्ष वापिस चले आये थे।

समाज का सार्वदेशिक सभा देहली के साथ सम्बन्ध—१४ मार्च सन् १९३० को इस समाज का सम्बन्ध सार्वदेशिक सभा के साथ हो चुका है।

आर्यसमाज का कार्य—इस समाज का सब से अधिक प्रशंसनीय कार्य समस्त हिन्दुओं के मृतकों को श्मशानभूमि में ले जाकर उनके दाहकर्म संस्कार करने का है। उस समय यह कोई विचार नहीं होता कि यह आर्यसमाजी है अथवा ग़ैर आर्यसमाजी, इस कार्य से समाज सर्वप्रिय बन गया है।

आर्यसमाज के मन्दिर में मकर संक्रान्ति, बसन्तपंचमी, शिवरात्रि (ऋषिबोध-उत्सव), होली, वैशाखी, जन्माष्टमी, दशहरा, दिवाली तथा आर्यसमाज का स्थापना दिवस बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है और स्त्रियाँ भी भाग लेती हैं।

समय समय पर समाज ने वहाँ की मुसलमान स्त्रियों की शुद्धि कर उनका विवाह हिन्दुओं के साथ कराया है।

समस्त हिन्दुओं की आर्यसमाज के साथ सहानुभूति रहती है। यहाँ पर आर्यसमाज की स्थापना में बंगाली, मदरासी, गुजराती तथा पंजाबी आदि सब का ही हाथ रहा है। कई मुसलमान भाई भी इस समाज के सहायक हैं।

श्री मानकचन्दजी गुलशन इस समाज के आज कल प्रधान हैं। आप कई वर्ष तक मन्त्री पद पर भी रह चुके हैं। आप बड़ी लगन से कार्य करते हैं।

लन्दन

लन्दन संसार का सब से बड़ा नगर है। इसकी जन-संख्या ८० लाख है। समय समय पर यहाँ पर कई आर्य प्रचारक गये हैं, परन्तु उनका कार्य हम किसी अंश में भी सन्तोषजनक नहीं कह सकते। उन्होंने केवल नाममात्र का प्रचार किया है। जहाँ पर सब मतावलम्बियों के मन्दिर, मसजिदें और गिरजे हों कितने दुःख की बात है कि आर्यसमाज अपने ५० वर्ष के काल में भी वहाँ अपना कोई मन्दिर अब तक नहीं बना पाया और न वहाँ कोई आर्यसमाज का संगठन और प्रचार-कार्य ही है।

वहाँ वैदिक-धर्म के प्रचार के लिये बड़ा विस्तृत क्षेत्र है, क्योंकि वहाँ के निवासियों का विश्वास ईसाई मत पर से उठ चुका है। वे समझ गये हैं कि ईसाई मत अब उनको शान्ति नहीं दे सकता इसलिये वे आज किन्हीं नये सिद्धान्तों को अपने जीवन में ढालने के लिये उत्सुक हैं। मुख्यकर ऐसे समय में जब कि स्वराज्य प्राप्ति का आन्दोलन इस देश में इस तीव्रता से चल रहा हो, यह हमारे लिये बड़ा सुअवसर है कि हम वैदिक नाद वहाँ के कूटनीतिज्ञों को जाकर सुनायें और उनमें प्राचीन वैदिक सभ्यता और संस्कृति का प्रचार करें ताकि वे अपनी मनोवृत्ति बदल कर सच्चे आर्य बन जायें।

लन्दन में श्री टेकचन्दजी टण्डन—आप बड़े पुराने और सच्चे आर्य हैं। आप यहाँ आठ वर्ष से रहते हैं और व्या-

पार करते हैं। आप की अवस्था ६३ वर्ष की है। जो यहाँ से आर्य-उपदेशक जायेंगे उनको आप से प्रचार में बड़ी सहायता मिल सकती है। आप की बड़ी प्रबल इच्छा है कि आप अपने जीवन के इस अन्तिम काल में आर्यसमाज की कुछ सेवा करें। हमें पूर्ण आशा है कि जब वहाँ उच्च कोटि के विद्वान् आर्य-प्रचारक पहुँचेंगे तो आप उनको अपना पूरा सहयोग देंगे।

स्त्री आर्यसमाज और आर्य-कन्या पाठशालाओं का अभाव—विदेशों में कई समाजों का ध्यान अभी तक स्त्री आर्यसमाज और आर्य कन्यापाठशाला की ओर नहीं गया है। जब तक गृह-देवियों में और कन्याओं में वैदिक-धर्म के संस्कार घर नहीं करेंगे उस समय तक हम वास्तविक आर्य नहीं बन सकते इसलिये आवश्यकता है कि विदेशों की जिन समाजों में स्त्री आर्यसमाजें और आर्य-कन्या पाठशालाएं अभी तक स्थापित नहीं हुई हैं वहाँ शीघ्र ही प्रयत्न करके इनको स्थापित कराया जावे।

आर्य कन्यापाठशालाएं—साधारणतया कन्याओं को पुरुषों से नहीं पढ़ाना चाहिये। जब तक अध्यापिकाओं का प्रबन्ध न हो जावे कन्याओं को माता पिता भाई व वृद्ध पढ़ावें। सत्यार्थ-प्रकाश का तीसरा सम्मुल्लास इस विषय में बिलकुल स्पष्ट है, उसी के अनुसार शिक्षा होनी चाहिये।

पौराणिक मत का ह्रास

आर्यसमाज द्वारा सत्य-सनातन वैदिकधर्म के प्रचार से उपनिवेशों में बहुत कुछ सुधार होचुका है, समुद्र-यात्रा ही एक पुरानी रूढ़ि पर पदाघात था। यहाँ हिन्दुओं में, मद्रासियों को छोड़, छूवाछूत का बखेड़ा भी नहीं रहा। निकम्मी रूढ़ियां भी

धीरे २ नष्ट होरही हैं। इनमें वर्णान्तर विवाह प्रचलित हैं और विधवाविवाह का विरोध करना मूर्खता समझी जाती है। शुद्धि को बड़ा महत्व दिया जाने लगा है। इस कार्य में सब ही प्रसन्नता-पूर्वक सहयोग देते हैं। अपनी कन्याओं को सब सहर्ष पढ़ने के लिये भेजते हैं।

भावी धर्म

यह हम दृढ़ता और विश्वास-पूर्वक कह सकते हैं कि यदि आर्य्यसमाज का प्रचार-कार्य जारी रहा तो प्रवासी हिन्दुओं का भावी धर्म "वैदिक-धर्म" ही होगा। उपनिवेशों में आर्यसमाज के लिये सुविस्तृत क्षेत्र विद्यमान है। एक तो वहाँ हिन्दुओं की संख्या थोड़ी है, दूसरे छूआछूत का भूत भाग चुका है, तीसरे पौराणिक वर्णान्तर विवाह के विना इनका काम चल नहीं सकता, चौथे विधवा-विवाह के लाभ को समझ गये हैं, पाँचवें शुद्धि प्रथा को अपना लिया है, छठे अन्य जातियों के सम्पर्क और संघर्ष से हिन्दुओं की आँखें खुल गई हैं, सातवें पौराणिक कुरीतियों से उनको अरुचि और घृणा होगई है, आठवें आर्यसमाज को अपना रक्षक अनुभव करने लगे हैं, नवें 'बाबा-वाक्यं प्रमाणम्' पर से नवयुवकों का विश्वास उठ चुका है। इनके अतिरिक्त और भी अन्य बातें हैं जो आर्यसमाज के प्रचार के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं।

विदेशों में गये आर्य-उपदेशक

विदेशों में गये हुये उपदेशक चार भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। पहिले वे जिनके अन्दर धन कमाने का भाव और प्रचार का भाव मिश्रित था, दूसरे वे जिनके अन्दर भ्रमण का भाव और प्रचार का भाव मिश्रित था, तीसरे वे जिनके अन्दर

चन्दा इकट्ठा करने का भाव और प्रचार करने का भाव मिश्रित था, चौथे वे जिनके अन्दर यदि कोई इच्छा थी तो वह केवल प्रचार की एकमात्र शुद्ध भावना और सच्ची लगन।

प्रश्न यह उठ सकता है कि इन उपरोक्त वर्णित उपदेशकों में से किस सज्जन की किस कोटि में गणना की जाये। इसके सम्बन्ध में हम केवल इतना ही कहेंगे कि इसका उत्तर प्रत्येक उपदेशक और विदेशों में रहने वाले भारतीय ही अपनी आन्तरिक आत्माओं से ले दे सकते हैं। हम केवल इतना ही कहेंगे कि जहां कई महानुभावों ने वहाँ जाकर बड़े त्याग का जीवन व्यतीत करते हुये वैदिक-सभ्यता के प्रसार में तनमय होगये वहाँ दूसरी ओर हमारे सार्वदेशिक सभा के कार्यालय में समय २ पर कई सज्जनों के विषय में सदाचार और धन सम्बन्धी शिकायतें आई हैं जिससे उन्होंने आर्यसमाज को कलंकित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। हमने जान बूझकर एक दो घटनाओं को छोड़कर उन वैयक्तिक घटनाओं का उल्लेख इस इतिहास में नहीं किया है। आशा है कि ऐसे उपदेशक भविष्य में सुधरने का पूरा यत्न करेंगे और विदेशों में बसने वाले भारतीय भी अपने पिछले अनुभवों से लाभ उठाकर ऐसे उपदेशकों से सावधान रहेंगे।

प्रचारक कैसे हों

पाठक इस तमाम इतिहास को पढ़कर इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि अब तक आर्यसमाज का प्रचार केवल भारतीय उपनिवेशों में ही हुआ है जब कि ईसाई, मुसलमान, बौद्ध तथा रामकृष्ण परमहंस संघ इत्यादि के मिशन स्थान स्थान पर स्थापित होचुके हैं और प्रत्येक मिशन अपने सिद्धान्तों के प्रचार में प्रतिवर्ष लाखों और करोड़ों रुपया व्यय कर देता है। इस देश के केवल रामकृष्ण परमहंस संघ ने ही अपने पचास योग्य संन्या-

सियों को विदेशों में अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिये नियत किया है। यह संन्यासी संस्कृत और अंग्रेज़ी के विद्वान् पण्डित हैं। इन्होंने यूरोप और अमरीका में स्थान स्थान पर अपने मिशन स्थापित कर दिये हैं। भारतीय संस्कृति की यदि कोई ध्वनि वहाँ पहुँची है तो वह इन नवीन वेदान्ती संन्यासियों की लग्न का ही फल है। जब वे अपने मतानुसार अध्यात्मवाद का प्रचार करते हैं तो वहाँ के बड़े २ दिग्गज विद्वान् तक प्रभावित होकर अपने मस्तकों को झुका देते हैं। एक ओर तो यह अवस्था और दूसरी ओर हमारे संन्यासी वर्ग पर एक दृष्टिपात कीजिये प्रथम तो हमारे यहाँ संन्यासी ही थोड़े हैं। उनमें से भी बहुतसों में उन गुणों का अभाव है जो सच्चे संन्यासियों में होने चाहियें। वह गुण है उच्च कोटि का तप, उच्च कोटि का त्याग और उच्च कोटि का स्वाध्याय। उंगलियों पर गिने जाने वालों को छोड़कर यह गुण उनमें नहीं पाये जाते। हमारा यह संन्यासी-वर्ग हमें क्षमा करे यदि हम यह साफ़ साफ़ कहदें कि इनमें अधिकांश में तप और त्याग की बहुत कमी है तप और त्याग संन्यासजीवन का सौन्दर्य्य और सर्वस्व है। कोई संन्यासी कितना ही विद्वान् क्यों न हो यदि उसका जीवन तप और त्याग से शून्य है तो उसका उपदेश लच्छेदार भाषा, श्रुति और स्मृति के प्रमाणों तथा अलंकारों से पूरित होते हुये भी फलदायक नहीं हो सकता। आर्यसमाज के संन्यासी और विद्वानों को रामकृष्ण परमहंस के इन चेलों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उनके प्रचार का यह फल है कि आज फ्रांस के सबसे बड़े व्यक्ति रोमेन रोलैण्ड उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस की जीवनी लिखने पर बाधित हुये हैं। क्या दयानन्द के अनुयायी इस सौभाग्य को प्राप्त नहीं कर सकते कि वे यूरोप के विद्वानों को दयानन्द की जीवनी लिखने पर बाधित करें।

यह सौभाग्य का दिन लाया जा सकता है। उसको लाने के लिये प्रचार-युग को पुनः लाना पड़ेगा। हमें नवयुवकों तथा संन्यासियों का एक ऐसा संघ तैयार करना होगा जो भिक्षावृत्ति धारण करके देश विदेश में घूम कर वेदों की पतित-पावनी शिक्षा को सर्वत्र फैलाने में अपने जीवन की इतिश्री समझेंगे। इस संघ के सदस्यों के रहने के लिये स्थान शान्तिमय होना चाहिये। इनके लिये एक बहुत बड़ा पुस्तकालय हो जिसमें उच्चकोटि के तमाम आर्ष-ग्रन्थ विद्यमान हों। वहां पर यह लोग पहिले अपने सिद्धान्तों का और बाद को संसार में प्रचिलित मतों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करें। इसके पश्चात् "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" को अपने शेष जीवन में चरितार्थ कर दें।

हम उस शुभ दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब हमारे विचारों के साथ सहानुभूति रखने वाले आर्य-विद्वान् इस संघ के निर्माण में सार्वदेशिक सभा का हाथ बटावेंगे।

इसका यह अर्थ नहीं है कि जब तक ऊपर वर्णित संन्यासी और युवक तैयार न हों प्रचार-कार्य बिलकुल बन्द रहे। उस समय तक उनके अभाव में अन्य उच्चकोटि के सदाचारी विद्वान् वहां जाकर प्रचार करें। जो गृहस्थ के झगड़ों में अधिक फँसे हों उनको तो विदेशों में जाकर प्रचार करने का नाम भी कदापि नहीं लेना चाहिये। केवल उन्हीं सज्जनों को जाना चाहिये जो अपना तन और मन वैदिकधर्म प्रचार की बलिवेदी पर चढ़ा सकें। उनको एक देश में कई कई वर्ष तक रहना होगा और जब तक दूसरा योग्य व्यक्ति उनके स्थान पर न पहुँच जाये आना नहीं होगा। अब तक प्रचार को उपदेशकों ने थियेटर और ड्रामा बनाया हुआ है। किसी स्थान पर एक दो व्याख्यान दे दिये और समझ लिया कि वैदिकधर्म का

प्रचार हो गया और आर्यसमाज और भगवान् दयानन्द का उद्देश पूर्ण हो गया ॥

ढोंगी उपदेशकों से बचने का उपाय—भविष्य में विदेशों में बसे आर्य-भाई इस बात का पूरा ध्यान रक्खें कि वे किसी को आर्यसमाज का उपदेशक उस समय तक न समझें जब तक कि उसके पास सार्वदेशिक सभा का विदेशों में प्रचार करने के लिये प्रमाण पत्र (Authority) न हो। यदि उनको किसी उपदेशक को बुलाना हो तो उन्हें उसे सभा के द्वारा ही बुलाना चाहिये। इस प्रकार वे आर्यसमाज के पवित्र उद्देश को कालिमा से बचा सकेंगे और अपने धन को भी व्यर्थ नष्ट न होने देंगे।

विदेश प्रचार के सम्बन्ध में एक विचित्र बात

इस देश में प्राय: आर्यसमाजी यह कह दिया करते हैं कि क्या अपने देश में वैदिकधर्म का पर्याप्त प्रचार हो चुका है जो विदेशों में प्रचार की सूझने लगी है। पिछली मनुष्य-गणना ने यह सिद्ध किया है कि आर्यसमाजियों की जनसंख्या अभी दस लाख भी पूरी नहीं हुई है। क्या पैंतीस करोड़ जनसंख्या वाले देश में केवल दस लाख आर्यों की गणना हमें यह उत्साह दे सकती है कि हम देश को छोड़ कर विदेश की राह लें? अभी हमें इस देश में ही बहुत कुछ करना है। जब तक हम भारत के ९९ प्रतिशत निवासियों को ही पहिले आर्य न बनालें हमको विदेश प्रचार का नाम लेने का क्या अधिकार है? विदेश प्रचार की स्कीमें बनाना और उस ओर अपने ध्यान, समय और शक्ति को लगाना उचित प्रतीत नहीं होता।

उत्तर—ऐसा विचार रखने वाले सज्जनों से हमारा नम्र निवेदन है कि उनकी युक्ति से देश-प्रचार की अत्यन्त अधिक

आवश्यकता तो अवश्य प्रकट होती है, परन्तु विदेश-प्रचार की इस समय आवश्यकता नहीं, यह सिद्ध नहीं होता। अपने देश में सम्पूर्णतया प्रचार करने के पश्चात् दूसरे देशों में प्रचार करना कोई अच्छी प्रचार-नीति नहीं है। जब तक मेरे घर के सब लोग सत्य-भाषण करने वाले न बन जावें तब तक मैं दूसरे घरों में रहने वालों को सत्य बोलने का उपदेश न दूं, यह कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं। मुझे चाहिये कि मैं अपने घर में भी सत्य का प्रचार करूँ और दूसरों के घरों में भी। यह सम्भव है कि मेरे घर वालों के संस्कार इतने निर्बल और दूषित हों कि उन पर मेरे उपदेश का प्रभाव इतना शीघ्र न पड़ता हो जितना किसी अन्य घर वालों पर। जिनके संस्कार उनसे कहीं अधिक प्रबल और शुद्ध हों। देश विदेश का प्रचार साथ-साथ चलाना चाहिये। हमको तो अपने जीवन में "वसुधैव कुटुम्बम्" को चरितार्थ कर अपने जीवन में ढालना है। वैदिकधर्म, वैदिक-शिक्षा और वैदिक सभ्यता समस्त संसार के लिये समान दृष्टि से है।

यदि हम अपने देश में खूब ज़ोर से सच्चे धर्म का प्रचार करें तो उसकी गूंज दूसरे देशों में पहुँचती है और वहां के धर्मपिपासु यह इच्छा प्रकट करते हैं कि उन तक ही उस धर्म का संदेश पहुँचाया जावे। इसी प्रकार यदि हम विदेश में ज़ोर से उस धर्म का प्रचार करते हैं तो उसका प्रभाव इस देश के प्रचार पर पड़ता है। विदेश के विद्वान् जब हमारे धर्म को ग्रहण कर लेते हैं तो उनका अनुसरण देश और विदेश की साधारण जनता शीघ्रता से करने लग जाती है।

आज देश विदेश सब मिलकर एक क्षेत्र बन रहे हैं। देश दूरी और काल दूरी मिट चुकी है। आधुनिक विज्ञान की

बढ़ती उन्नति ने विचारों के फैलाने के ऐसे साधन उपस्थित कर दिये हैं जो हमें मुसलमानों और अंग्रेज़ों के बीच-काल में प्राप्त न थे। आर्यसमाज को भी उन साधनों से लाभ उठाना चाहिये और अपने शुद्ध सनातन वैदिकधर्म का संदेश अन्य देशों तक शीघ्रातिशीघ्र पहुँचाना चाहिये।

विदेश-प्रचार को संगठित रूप में चलाने के लिये तीन आवश्यक बातें

१—लोकमत को पैदा करना।

२—धन-जन संग्रह करना।

३—भिन्न २ देशों में मिशन स्थापित करना।

लोकमत पैदा करने कराने के लिये सब से बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि सार्वदेशिक सभा की ओर से एक अंग्रेज़ी साप्ताहिक पत्र जारी किया जावे और उसका सम्पादन एक ऐसे महान् व्यक्ति के हाथ में हो जो विदेश-प्रचार के लिये अपना अमूल्य जीवन अर्पण करदें। उनकी योग्यता इस कोटि की हो कि वह इस साप्ताहिक पत्र का सम्पादन भली प्रकार कर सकें। इस पत्र द्वारा देश में विदेश-प्रचार की आवश्यकता का आन्दोलन ज़ोर से किया जावे तथा एक ऐसा समुदाय शिक्षित वर्ग में (जिसका उल्लेख हम पूर्व कर आये हैं) तैयार किया जावे जो विदेश-प्रचार के लिये तन, मन देने को उद्यत हो। इस साप्ताहिक पत्र द्वारा न केवल भारतवर्ष में ही वैदिक-धर्म का प्रचार होगा अपितु भारतवर्ष से बाहर भी इस पत्र को स्थान २ में भेजकर वहाँ के पठित समाज में भारतीय संस्कृति के फैलाने की अभिरुचि उत्पन्न की जा सकती है। इस

पत्र द्वारा जब तीव्र आन्दोलन कुछ समय तक जारी रक्खा जावे तब जनता से धन-जन संग्रह के लिये अपील की जानी चाहिये।

धन-जन दोनों की आवश्यकता विदेश-प्रचार के लिये उस समय अनुभव होगी जब देशी और विदेशी जनता में यह भाव जाग्रत होजावे कि वैदिक-धर्म वस्तुतः संसार की अशांति को दूर कर सकता है और संसार भर के विद्वान् उसका स्वागत करने के लिये व्याकुल हैं। विज्ञान के क्षेत्र में, दर्शन के क्षेत्र में तथा अन्य साहित्य के क्षेत्र में सभी प्रकार के विचारों से वैदिक-धर्म के सिद्धांतों की पुष्टि हो सकती है, ऐसा अनुमान पाश्चात्य विद्वानों को हो जाने पर उनके लिये वैदिक-धर्म को ग्रहण करना सुलभ हो जावेगा। जब यह स्थिति भारतवर्ष की जनता को ज्ञात हो जावेगी तो उस समय धन का संग्रह सहल हो जावेगा। इसके साथ २ ऐसे उच्च कोटि के संन्यासी, सदाचारी और शिक्षित नवयुवकों को भी तैयार करना होगा जो वैदिक-धर्म के प्रचार में मिश्नरी जीवन व्यतीत करना अपना गौरव मानेंगे। ऐसा होजाने पर सार्वदेशिक सभा को ऐसा संगठन तैयार करना होगा जो विदेशों में वैदिक मिशन स्थापित करे।

मिशन स्थापित करने की विधि इस प्रकार होनी चाहिये। एक उच्च कोटि का विद्वान् कुछ समय के लिये अपने साथ दो तीन सहायक लेकर अमरीका में बैठ जावे। वहां एक मासिक पत्र जारी कर दिया जावे। उस पत्र की सहायता से वहां के शिक्षित समुदाय में खूब ज़ोर से वैदिक-धर्म के मूल सिद्धान्तों का प्रचार किया जावे। वहाँ की जनता को सब प्रकार से व्याख्यानों की सूचना देकर बड़े २ भवनों में मूल सिद्धान्तों के ऊपर व्याख्यान दिया जावे। व्याख्यान समाप्ति पर श्रोताओं की शंकाओं का समाधान किया जावे। सप्ताह में एक दिन समय निश्चित

कर दिया जावे कि वहाँ की जनता उस विद्वान् से मिलकर अपनी शङ्काओं का समाधान करा सके। अमेरिका देश में विचार स्वतन्त्रता अधिक होने के कारण वैदिक-धर्म के सिद्धांतों का स्वागत अन्य देशों की अपेक्षा वहाँ अधिक होगा। इसके अतिरिक्त वहाँ के निवासी प्रथा के दास भी नहीं हैं अतः उनको दूसरी जातियों से विचार स्वीकार करने में संकोच नहीं होगा। जब कई वर्षों तक लगातार अमेरिका में प्रचार किया जावे तो उस मण्डली का मुखिया अपने सहायकों को अमेरिका में छोड़कर अन्य दो तीन सहायक भारतवर्ष से मंगा किसी दूसरे देश में दूसरे मिशन की स्थापना करें। पिछला अनुभव उनको वहाँ नयी स्थिति में सफल होने में सहायक होगा। वहाँ भी जाकर एक मासिक पत्र जारी कर दिया जावे। इससे यह न समझ लिया जावे कि एक विद्वान् ही इस प्रकार सारे संसार के लिये काफी होगा। कई विद्वानों के तत्वावधान में भिन्न २ विदेशों में यह कार्य होना चाहिये। यदि हमारे पास ऐसे अभी अधिक विद्वान् न हों तो हमको किसी एक ही विद्वान् से कार्य आरम्भ कर देना चाहिये। जब एक से अधिक हों तो कई कई वर्ष के अनन्तर उनको अपना कार्यक्षेत्र परिवर्तन कर देना चाहिये ताकि उनको अन्य देशों का भी अनुभव प्राप्त हो जावे और इस प्रकार वैदिक-धर्म-प्रचार के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। इस प्रकार के मिशन जहां जहां स्थापित किये जावें उन सबकी आर्थिक सहायता का बोझ भार सार्वदेशिक सभा के सिर पर होना चाहिये। इस बोझ भार को उठाने के लिये सार्वदेशिक सभा को पूरा प्रयत्न करना होगा।

विदेश-प्रचार का कार्य जब चल निकलेगा तो उसको जारी रखने के लिये सारा हिन्दू-समाज तन, मन, धन से सहायता

करेगा। विदेश-प्रचार का अर्थ विदेशों में प्राचीन संस्कृति को फैलाना है और वह संस्कृति हिन्दू-मात्र की सम्पत्ति है, इसलिये उसके प्रचार का गौरव हिन्दू-समाज को मिलेगा। आर्य-समाज तो उस गौरव को हिन्दू-समाज तक लाने के लिये साधन बनेगा। आर्य्यसमाज के भाग्य में यह अंकित होचुका है कि वह वैदिक-धर्म तथा प्राचीन आर्य-संस्कृति को संसार भर में फैलाये और संसार के भविष्य को उज्वल बनाये।

प्रभु ! हमें बल दो कि हम आपकी वेद-रूपी पवित्र वाणी को सर्वत्र फैलाने में सफल हो सकें। यही हमारी आपसे प्रार्थना है।

जर्मनी

जर्मनी संसार की वर्तमान छः बड़ी शक्तियों में से एक है। वे छः शक्तियाँ इस प्रकार हैं—इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रान्स, रूस, अमेरिका तथा जापान। भारतीय विद्यार्थी जर्मनी में विज्ञान, डाक्टरी तथा पश्चिमीय दर्शन-शास्त्र पढ़ने के लिये जाते हैं। यहां पर कई आर्य सज्जन समय समय पर जा चुके हैं, परन्तु इनमें उल्लेखनीय केवल श्री इन्द्रसेनजी एम. ए. हैं। यहाँ पर आर्यसमाज का इस समय तक कोई नियमित प्रचार नहीं है।

श्री इन्द्रसेनजी एम. ए. का परिचय—आप हिन्दू कालेज देहली में दर्शन-शास्त्र के एक युवक प्रोफ़ेसर हैं। अपने बाल्यकाल ही से आपकी आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द में अटल श्रद्धा है।

योरुप भ्रमण और जर्मनी में व्याख्यान—आप जुलाई सन् १९३१ में योरुप के लिये रवाना हुये थे। आपका उद्देश जर्मनी में मनोविज्ञान तथा पश्चिमीय दर्शन का अध्ययन करना था। आपने

प्रारम्भ में आठ महीने स्विटजरलैंड में व्यतीत किये, तेरह महीने जर्मनी में, एक महीना फ्रान्स में और एक एक सप्ताह इंगलैंड और इटली में। आपने जर्मनी के प्रसिद्ध नगर निग्सवर्ग में कई व्याख्यान दिये थे जिनमें एक मुख्य व्याख्यान था "स्वामी विरजानन्द, स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज"।

आप का अनुभव—आपका कहना है कि जर्मनी के मनुष्य भारत के प्राचीन उच्च आदर्शों को अपनाने के लिये लालायित हैं। वे आत्मिक शांति की खोज में हैं क्योंकि वर्तमान यूरोपीय जीवन में घबराहट बहुत है। वहाँ पर बहुतसे पुरुष और देवियां योगाभ्यास सीखने के लिये उत्सुक हैं। इसके लिये शीघ्र से शीघ्र वहां उन आर्य-विद्वान् और संन्यासियों को पहुँचना चाहिये जिनकी रुचि योगाभ्यास की ओर अधिक हो। उन उपदेशकों को स्वयं अपनी प्राचीन सभ्यता में हार्दिक और अटल श्रद्धा होनी चाहिये। उसे उससे अपने जीवन में सुख मिला हो। इन्द्रिय-संयम उनके स्वभाव का अंग बन चुका हो। संस्कृत और वैदिक साहित्य से पूर्व परिचय हो। जिस विदेश में जाना हो उस विदेश की भाषा भी सीखली जावे। भारत के इतिहास और भूगोल का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिये। अपनी त्रुटि और दोष को स्वीकार करने के लिये हमेशा तैयार रहना चाहिये। वहाँ के लोकव्यवहार के नियमों का जानना भी आवश्यक है।

परिशिष्ट

आर्यों पर आक्षेप

उपनिवेशों में फूट फैलाने का सारा दोष आर्यों के मत्थे मढ़ा जाता है। इसका एक सबल कारण है। अतीत युग में हिन्दुओं का धर्म-भाव शिथिल हो गया था और विधर्मियों को उनका शिकार करने का खूब अवसर मिलता था, किन्तु आर्य-समाज के प्रचार से उन हिन्दुओं के नेत्र-कपाट खुल गये और उनका धर्म-भाव दृढ़ होने लगा। इस पर शिकारियों ने आर्यों को बुरा भला कह कर कोसना शुरू किया। उन पर फूट फैलाने का अपराध लगाया और विना जांच पड़ताल किये कुछ राष्ट्रवादी हिन्दू भी आर्यों को अपराधी समझने लगे। यह एक विचित्र न्याय है।

हम अपने राष्ट्रवादी मित्रों को बतला देना चाहते हैं कि भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करना ही सच्ची राष्ट्रीयता है और यही कार्य आर्यसमाज देश और विदेशों में कर रहा है। जब तक ईसाई और मुसलमान *

---

* मुसलमान किस प्रकार किस नई जगह में अपना प्रचार करते हैं इसका एक उदाहरण एक विद्वान् पादरी की किताब से यहां दिया जाता है—

Muhammadanism is turbulently aggressive.

'There is one God and Muhammad is His prophet, rings out defiantly in the Fiji of to day. In every settlement are to be found its active missionaries who style themselves 'Moulvis' and along the high ways the faqirs spread their faith. There are hundred of others who do not forsake worldly tasks, but who will move heaven and earth to make a proselyte. A Muhammadan will quietly settle in a Hindi community and open a store. For six months there is no sign of my attempt to propagate his religion. He subscribes to Hindu feasts, and by his generosity wins confidence.

उपनिवेशों में अपने मत का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रचार करते रहेंगे और हिन्दुओं का शिकार करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते रहेंगे तब तक आर्यों को अपने धर्म का प्रचार रोक देने की सम्मति देना मानो भारतीय संस्कृति की हत्या करने की सम्मति देनी है। यदि ईसाई और मुसलमानों के प्रचार से फूट नहीं फैल सकती तो आर्यों के प्रचार से कैसे फैल सकती है? धर्मप्रचार से संघशक्ति और राजनैतिक समस्या को कोई हानि नहीं पहुँच सकती यदि साम्प्रदायिक संकीर्णता से काम न लिया जाये।

विदेशों में कितने भारतीय कहां बसते हैं ?

एशिया।		कुल संख्या	सन्
लङ्का	...	६९७२०५	१९३१
ब्रिटिश मलाया	...	६३४००९	१९३१
ब्रिटिश बोर्नियो	...	१२९८	१९३१
डच ईस्ट इंडीज	...	२७६३८	१९३०
श्याम	...	५०००	१९३१
फ्रान्सीसी इन्डोचीन	...	६०००	१९३१
हांगकांग	...	४७४५	१९३१

Little by little, he commences his business insinuating, rather than stating, that Hinduism requires some substantial improvements which he could suggest. At length a Hindu turns, and the Muhammadan takes him into his house and gives him a daughter to wife. *That Hindu never goes back* when the Hindu relatives persecute him. The Musalman encourages him to stand firm by telling the story of the Prophet and Abu Bekr in the cave when hunted by their enemies.
'Do not fear, brother Abu, though we are but two—God makes the third.

First edition of the book was. Published in 1910. } ... Fiji of To-day. (paga 324). By. REV. J. W. BURTON.

एशिया		कुल संख्या	सन्
जापान	...	३१९	१९३१
अफ़गास्तिान	...	१५९	१९३२
फारस	...	३९०००	१९३२
इराक	...	२५९६	१९३२
मुस्कट	...	४०००	१९३२
अदन	...	७२४७	१९३२
टर्की	...	२५	१९३२
सिचेलीज़	...	५५५	१९३१
अण्डमन	...	७५००	१९३०
पेलेस्पइन	...	६०	१९३१
कौमन वेल्थ आफ अस्ट्रेलिया		२०००	१९३१
डोमिनियन आफ न्यूज़ीलैण्ड		११६६	१९३२
फ़िजी	...	७६७२२	१९३२
टोन्गा (द्वीप)	...	२३	१९३१
फानिंग (द्वीप)	...	४	१९३१
अफ्रीका			
द्रपोन्मी	...	१२	१९३२
ईजिप्ट	...	५११	१९३२
सूदान	...	५२५	१९३१
मडरा सोमानीलैण्ड	...	५२०	१९३१
इटालियन सोमानीलैण्ड	...	३२६	१९३२
अबीसोनिया	...	२०००	११३२
केनिया	...	३९६४४	१९३२
ज़ंज़ीबार (प्रोक्टेरेट)	...	१५२६४	१९३१

		कुल संख्या	सन्
यूगेण्डा	...	१५०७७	१९३१
टेंगेनिका (टेरटरी)	...	३२४२२	१९३१
पुर्तगाल ईस्ट अफ्रीका	...	५०००	१९३१
उत्तरी रोडेशिया	...	१७१	१९३०
दक्षिणी रोडेशिया	...	१०००	१९३२
न्यासालैण्ड	...	१५०९	१९३१
नेटाल	...	१४६९८६	१९२६
ट्रान्सवाल	...	१५७४७	१९२६
केपकाँलोनी	...	६६५५	१९२६
वेलजियम कोंगो	...	३५०	१९३१
मेडागास्कर	...	७९४५	१९३१
रियूनियन	...	१०००	१९३२
मौरीशस	...	२१५७९९	१९३१
गोल्ड कोस्ट कॉलोनी	...	५६	१९३१
नाइजीरिया	...	३२	१९३१
सीरिया लीनो	...	२५	१९३१
उत्तरी अमरीका			
कनाडा	...	११००	१९३२
यू० एस० ए०	...	१८५०	१९२३
मध्य अमरीका			
मेक्सिको	...	२५०	१९२१
पानामा	...	३००	१९२१
ब्रिटिश होन्डरस	...	४६७	१९३१
दक्षिणी अमरीका			
ब्रिटिश गायना	...	१३१९१६	१९३१

		कुल संख्या	सन्
उच्च गायना	...	३६१५०	१६३१
मानी	...	२०००	१६३१
वेस्ट इंडीज़			
जमैका	...	१७७७५	१६३१
ट्रिनीडाड टोवेगो	...	१३७८३२	१६३१
क्यूबा	...	१०००	१६३१
यूरोप			
इङ्गलैण्ड वेल्स	...	७१२८	१६३२
फ्रांस	...	३५०	१६३२
जर्मनी	...	२००	१६३२
वेलज़ियम	...	१५	१६३२
इटली	...	३०	१६३२
आस्ट्रिया	...	३०	१६३२
स्विटज़रलैण्ड	...	२५	१६३२
स्पेन	...	२००	१६३२
जिब्राल्टर	...	७६	१६३२
माल्टा	...	४३	१६३२